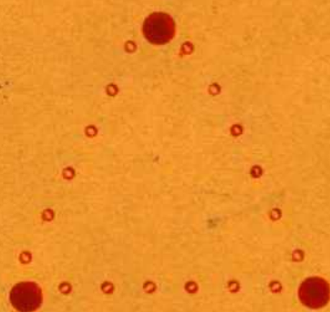
❀ श्री: ❀

परमपूज्य श्री बाबा महाराज

[वीतराग ब्रह्मनिष्ठ श्रीमद्‌अमृतवाग्भवाचार्य]



卐 प्रथम पुण्य स्मरण 卐



प्रकाशक :

श्रीमदमृतवाग्भवाचार्य सांस्कृतिक शिक्षा एवं शोध संस्थान

जयपुर-302004

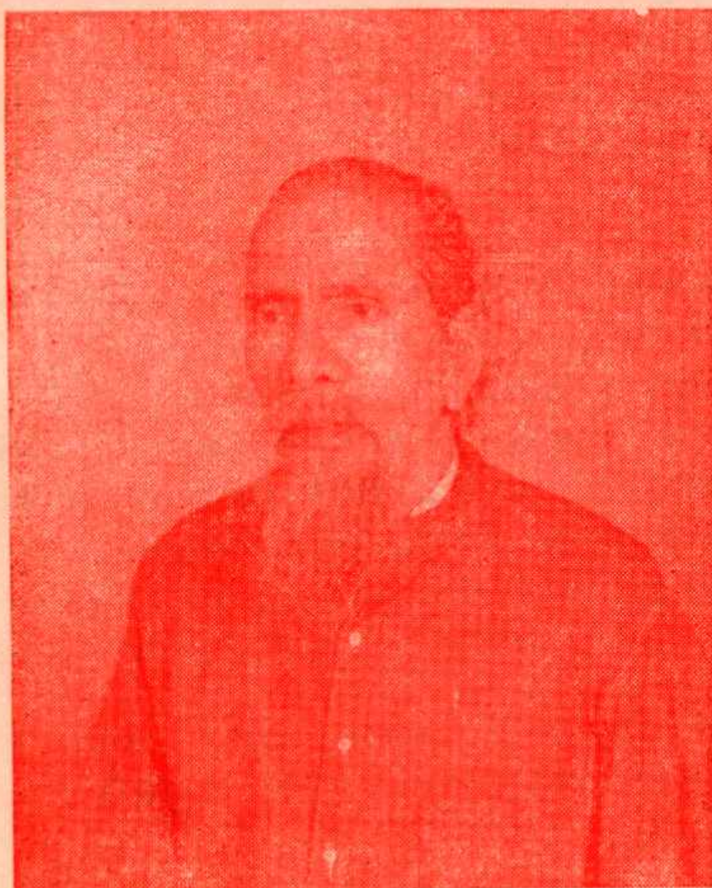
कार्तिक शुक्ला अक्षयनवमी

वि० सं० २०४०

Rs 3-

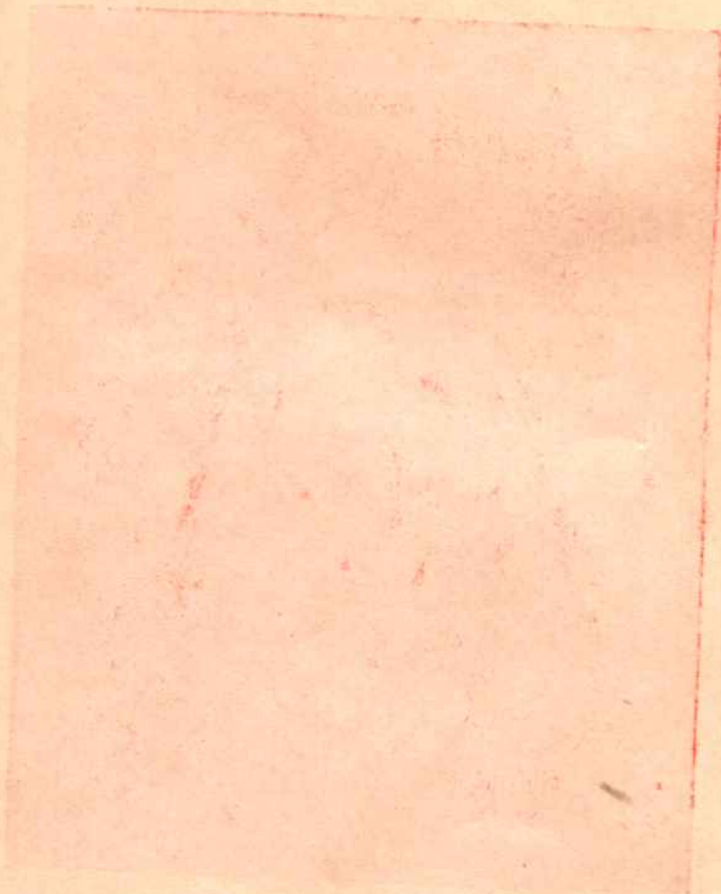
❀ श्रीः ❀

पूज्यपाद ब्रह्मलीन अनन्त श्री श्रीमद्अमृतवाग्भवाचार्य जी महाराज



जन्म :
आषाढ शु० १०
वि० सं० १९६०

लीलासंबरण :
कार्तिक शुक्ला अक्षय नवमी
वि० सं० २०३९



आत्म-निवेदनम्

परम श्रद्धेय बाबा !

आप चले गये ! अकस्मात् ही इस दृश्य जगत से। एक ऐसा विशाल वट जिसकी शीतल छाँह तले आश्रय पाने पर आत्मा को संतोष, मन को ढाढस, साहस, प्रेरणा और मस्तिष्क को शांति मिलती थी, महाशून्य में विलीन हो गया। साकार निराकार में और सगुण निर्गुण में परिणत हो गया। आप तो संजीवनी सिद्ध मृत्युजयी थे। प्राणोत्कर्ष की क्रिया के माध्यम से मायिक देह त्याग कर व्यष्टि से समष्टि में, शाश्वत चैतन्य में, चराचर ब्रम्हांड में, अनन्त ब्रह्म में लीन हो गये। अब न कोई आश्रय स्थल, न प्रेरणा का स्रोत, और न ही आशा, विश्वास उत्साह का केन्द्र बिन्दु।

जीवन काल में तो सोचते रहे—पूछलेंगे, जान लेंगे, सीख लेंगे, अभी क्या है ? सब कुछ घर में ही तो है। और, बस, यूं ही सब सोचते विचारते हमारे प्रमादवश अटूट आस्था, गहन विश्वास की दीवारें क्या ढह गई समूचे आश्रय स्थल की छत ही गिर कर कण-कण हो बिखर गई। जब भी आपके सान्निध्य में बैठते थे तब जैसे कोई बालक अपनी माता की गोद में बैठकर उससे विछोह की कल्पना ही नहीं करता, ठीक उसी प्रकार आपका सान्निध्य, आपका आश्रय हमें इतना विभोर किए रहता था कि कोई अन्यथा कल्पना या आशंका तक भी मन में कभी नहीं उभार पाई। एक अजीब सी रिक्तता छा गई है अब।

शिकवा-शिकायत किससे ? ना-किसी से भी नहीं—अपने आप से भी नहीं। आप ही तो कहा करते थे—जब-जैसा होना होता है वही होता है। अस्तु।

आपके सार्वभौम प्रेम तथा विश्व कल्याण की कामना के सामने अन्य असंख्य लौकिक ऐषणायें-कामनायें एवं भौतिक सिद्धियां स्वयं थक कर अपने ही चक्र में पिस कर रह गई। आप आध्यात्मिक वैभव सम्पन्न पराशक्ति के साम्राज्य में सर्वोच्च शिखर पर आसीन हो, दृष्टा के रूप में इस लीला विलास को देखते रहे और कोई भी जागतिक आकर्षण या भौतिक प्रलोभन आपको अपने लक्ष्य-उद्देश्य से विरत नहीं कर सका। आप सिद्धात्मा शिरोमणि जो थे।

आपका प्रत्येक आदेश--प्रवचन ईशानुभूति की ओर हमारा 'पथ-प्रशस्त

करता था और इस मायिक जगत की मनोहारी कामनाओं की स्वरचित स्वर्णिम सांकल में बंधे, संसार सागर में आकंठ डूबे हुये दिग्भ्रमित, सांसारिक विषय-वासनाओं में पूर्णतः आसक्त और तापत्रय से संत्रस्त को आपके आशीर्वाद तथा प्रेरणा रूपी पतवार के सहारे की सदा ही आशा बनी रही।

किन्तु अब तो आपके सदुपदेश और सतत स्मरण ही आपके भक्तों,-प्रेमियों को अपने मंगलमय भविष्य के लिये एक आशा की किरण और विश्वास का सम्बल है।

जो कुछ भी आप जब-तब हमें सुनाते रहे, जैसा भी स्मरण रह गया या जैसा भी समझ पाये अथवा जो कुछ भी आपके लेखों से ग्रहण कर पाये केवल वही-आपकी ही सामग्री-आपके पुनीत पाद-पद्मों में आपको सादर समर्पित........

श्रद्धाविनत्
दुर्गादत्त शर्मा
अध्यक्ष,
श्रीमद्मृतवाग्भवाचार्य सांस्कृतिक शिक्षा एवं शोध संस्थान, जयपुर।

ए–72, अमृत–पथ,
जनता कालोनी, जयपुर।

❀ श्रीः ❀

पूज्य बाबा महाराज

वीतराग ब्रह्मनिष्ठ श्रीमद्अमृतवाग्भवाचार्य

भारत वह दिव्य भूमि है जिसकी गोद में ऋषि-महर्षियों से लेकर भगवान राम और कृष्ण ने भी जन्म धारण कर अपने को कृतार्थ माना है। इस महिमामय देश की अपनी एक आध्यात्मिक धारा है, जो राष्ट्र जीवन के अन्तस में अनवरत प्रवाहित होकर उसे अनन्त चैतन्य के प्रकाश से परिपूर्ण बनाये हुए हैं। अनादि काल से लेकर अनन्त काल तक प्रवाहमान चैतन्य की यह धारा ही है जो वेद और उपनिषदों से लेकर सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय में मानव और विश्व कल्याण के लिये उपासनीय कही गयी है। समय-समय पर अनेक जीवनमुक्त युग-पुरुषों ने इस सांस्कृतिक धारा के संरक्षण एवं अभिवर्द्धन के लिये अपना योगदान किया है। अधिक दूर न जायें तो भी अभी कुछ विगत पूर्व ही भगवान आद्यशंकराचार्य ने भी अपने इसी दायित्व को भली-भांति पूर्ण किया। उसी परम्परा का अनेक ऋषि कल्प सिद्ध महापुरुषों ने उत्तरवर्ती काल में भी निर्वाह किया और राष्ट्रीय चैतन्य को आध्यात्मिक चैतन्य के साथ जोड़कर राष्ट्रजीवन में नयी संजीवनी शक्ति का संचार किया।

ऐसे ही सिद्ध महापुरुषों की कोटि में एक नाम आता है पूज्यपाद श्रीमद् अमृतावाग्भव आचार्य का जिन्होंने अपना संपूर्ण जीवन राष्ट्रीयता एवं भारतीय सांस्कृतिक पुनरुद्धार के लिये अर्पित कर दिया। वे सिद्ध योग एवं शाम्भवीशक्ति से सम्पन्न वीतराग सन्यासी थे तथापि राष्ट्रनिष्ठा का उनमें इतना प्राबल्य था कि उनकी दृष्टि में राष्ट्रीयता और राष्ट्रनिष्ठा ही आध्यात्मिकता की प्रतीक थी।

पुण्यस्मरण :

पूज्यपाद आचार्य श्री ने अपनी इहलोक लीला बुधवार कार्तिक शुक्ल, अक्षय नवमी सं० 2039 वि० (24 नवम्बर, 1982) को संवरण की। इस समय उनकी आयु का 80 वां वर्ष चल रहा था। तदनुसार 13 नवम्बर, 83 उनकी प्रथम पुण्यतिथि है। देश भर में फैला उनका शिष्यों, भक्तों और प्रेमियों का विशाल समुदाय उनके अभाव में अपने को आश्रयहीन समझ रहा है। एतदर्थ, उनकी शिक्षा और साहित्य ही वह एक मात्र निधि है जो हमें उनकी स्मृति से

जोड़कर रख सकेगी तथा राष्ट्र और मानव कल्याण की दिशा में एक जीवन्त शक्ति का काम करेगी। आइये इस अवसर पर हम इस महान् पुरुष का स्मरण कर अपने को धन्य बनायें।

परिचय :

पूज्यपाद आचार्य श्री अनेक क्षेत्रों में अलग-अलग आत्मीय सम्बोधनों से पुकारे जाते रहे। कहीं स्वामीजी, तो कहीं आचार्य जी, बाबाजी, श्री जी महाराज और कहीं बाबा महाराज। राजस्थान में उन्हें बाबा महाराज ही कहते थे। अतएव हम उन्हें बाबा महाराज ही कहेंगे। वे - गैरिक वसन धारण नहीं करते थे। सामान्यतया श्वेत-वसन ही साधुओं के समान धारण किया करते थे। गौरवर्ण इकहरा और स्फूर्तिवान शरीर, बाल, दाढ़ी तेजस्वी और मुख पर सहज मुस्कान लिये हुये वे सदैव अत्यन्त आत्मीय से दिखा करते थे। वे जब भी कभी किसी परिवार में निवास करते तो यही लगता कि वे उस परिवार के ही बड़े-बूढ़े अथवा मुखिया हैं।

उनका भ्रमण-क्षेत्र यद्यपि सम्पूर्ण भारत रहा तथापि जम्मू-काश्मीर, हिमाचल-प्रदेश, पंजाब, राजस्थान, उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में वे अधिक रहे। गंगा के किनारे भी उनका लम्बे समय तक निवास रहा।

सर्वतन्त्र स्वतन्त्र :

पूज्य बाबा महाराज सर्वतन्त्र स्वतंत्र थे। वे आत्मदर्शी, वीतराग, और सिद्ध पुरुष थे। लौकिक जीवन की समस्याओं से परे उनका चिन्तन व्यक्तित्व में निहित सुप्त गरिमा को जाग्रत करने के लिये होता रहता था। वे किसी भी विषय को अत्यन्त सरल शब्दों में ढाल कर सामान्य व्यक्ति के लिये भी बोधगम्य बना दिया करते थे। उन्होंने राष्ट्रीय जीवन से लेकर आध्यात्मिक जीवन तक क्रांतिकारी विचार प्रस्तुत किये हैं।

जन्म स्थान एवं शिक्षा :

पूज्य बाबा महाराज अपने निजी जीवन के सम्बन्ध में बहुत कम प्रकट किया करते थे। अत्यधिक आग्रह करने पर वे अपने जीवन सम्बन्धी कुछ आध्यात्मिक प्रसंग ही अपने भक्तों को सुनाया करते थे। इन प्रसंगों को भी वे किसी आध्यात्मिक विषय को स्पष्ट करने के लिये ही अधिकांशतया प्रकट किया करते थे। भक्तों एवं प्रेमियों के अत्यधिक आग्रह पर उन्होंने अपने जीवन के कुछ दिव्य संस्मरणों को लिखना स्वीकार कर तत्कालीन "श्रीस्वाध्याय" में प्रकाशन भी आरम्भ कर दिया था। उन्हीं संस्मरणों में एक संस्मरण आचार्य अभिनव गुप्त पाद से संबंधित है। जिसमें पूज्य बाबा महाराज लिखते हैं —

"घर में वर्षा ऋतु की समाप्ति पर पुस्तकों को धूप दिखायी जाती थी तथा झाड़ पोंछकर व्यवस्थित रूप से फिर उन्हें रखा जाता था। इस कार्य में, मैं बचपन से ही अभ्यस्त हो चुका था। घर में ग्रन्थ सम्पत्ति भी पर्याप्त मात्रा में थी। ब्राह्मणों का धन भी तो यही है। बहुत सारी पुस्तकें हस्तलिखित थीं और कुछ मुद्रित भी। बारम्बार उनका प्रबन्ध करने से पुस्तक विक्रेता की भांति बीसियों ग्रन्थकारों के नाम कण्ठस्थ हो चुके थे। उन्हीं नामों में से एक विशिष्ट नाम आचार्य अभिनवगुप्त का भी है। इनका नाम विशेष रूप से कन्ठस्थ रहने का एक कारण और भी है, मैं अपने पिताजी से कई बार शारदापीठ और अभिनव गुप्त के विषय में कुछ न कुछ कथा सुना करता था।"

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि पूज्य बाबा महाराज ने जिस वंश में जन्म ग्रहण किया वह ऐसे विद्वान ब्राह्मणों का वंश रहा है जिसमें परम्परा से वैदुष्य की विरासत रही है।

महाराष्ट्रीय बरकल शाखा के ब्राह्मणों, जो कभी विदर्भ से आकर प्रयाग में स्थायी निवास करने लगे थे इन्हीं में से कुछ लोग काशी आकर बस गये। जिनमें श्री कृष्ण शास्त्री बरकल एक प्रतिष्ठित विद्वान हुये। श्री शास्त्रीजी वहां की राज्य सेवा में भी थे। वैदुष्य और सम्पन्नता दोनों ही उन्हें विरासत में प्राप्त हुये थे। इन्हीं श्री कृष्ण शास्त्री के घर में प्रथम संतान के रूप में पूज्य बाबा महाराज ने आषाढ़ कृष्ण 10 सं. 1960 वि० को जन्म ग्रहण किया।

आपकी माता श्रीमती राधादेवी का पितृगृह प्रयाग में ही था। अतः प्रथम प्रसव के अवसर पर वे अपने पितृगृह प्रयाग में ही थीं। पिता परम शिव भक्त थे अतः प्रथम संतान का उच्चारण नाम वैद्यनाथ रखा गया। बालक वैद्यनाथ अपने शैशव काल से ही कुछ विचित्रताओं को लिये हुये था। उसे एकान्त और शान्ति अत्यन्त प्रिय थी। उनके बचपन की एक झांकी उन्हीं के शब्दों में अवलोकनीय है—

"लगभग पौने पांच वर्ष की अवस्था थी, शिवमहिमम्न स्त्रोत कण्ठस्थ हो गया था। प्रतिदिन सायंकाल सन्ध्या समय में ठाकुरजी के पास बैठना पड़ता था। घरवालों ने कुछ स्तोत्र तथा कुछ चुने हुये श्लोक कण्ठस्थ करा रक्खे थे। शिवरक्षा, रामरक्षा, गंगालहरी के कुछ श्लोक तथा "श्री पंचस्तवी" के कुछ श्लोक और इधर और उधर के कुछ देवताओं के ध्यानादि प्रचुर मात्रा में कण्ठस्थ हो गये थे और न जाने कहां-कहां के श्लोक थे पर कई अन्याय मुक्तक श्लोकादि भी पढ़ा अवश्य करते थे। माता महालय में तथा अपने घर में दोनों ही स्थानों में संध्या समय में मंगल-दीप जलाने पर उसे प्रणाम करना होता था, अनन्तर अपने से बड़े सभी लोगों को वहां जो भी उपस्थित हों, प्रणाम करना होता था। भारतीय सभ्यता में जिनका लालन-पालन हुआ है, वे सभी इस प्रथा से परिचित हैं। आज भी यह प्रथा भारत

के सभी प्रांतों में थोड़ी-बहुत पाई जाती है । इसी प्रकार प्रातःकाल नींद से जागते ही कुछ स्तोत्र पढ़ने होते थे, उसे हमारे यहां प्रातः स्मरण कहा जाता है । हाँ, सायंकाल के पढ़ने के स्तोत्रों से प्रातःकाल पढ़ने के स्तोत्र अन्य ही होते थे । शिव-महिम्न स्तोत्र सायंकाल पढ़ना होता था । यह स्तोत्र अत्यन्त सुप्रसिद्ध है । काश्मीर में इसका प्रचार प्रचुर मात्रा में पाया जाता है । पुष्पदंत नामक गंधर्वराज ने इस स्तोत्र का निर्माण किया है । स्तोत्र के अंतिम श्लोकों से यह बात स्पष्ट है, इसके ऊपर ऐतिहासिक दृष्टि से विचार फिर कभी किया जायेगा ।

एक दिन की बात है, गर्मी के दिन थे, कि पूज्य पिताजी घर आये ही थे, हम लोग छत पर बैठे थे । उन्होंने प्यार से मुझे कहा "महिम्न सुनाओ" में भी स्तोत्र सुनाने लगा । वाणी तुतली थी, उच्चारण वर्णों का स्पष्ट नहीं था, फिर भी स्तोत्र पढ़ने में बहुत आनन्द आया करता था । कुछ श्लोक सुना दिये । अनन्तर मैंने कहा "इसका अर्थ क्या है ? पिताजी !" पिताजी ने कहा "बड़े होने पर बता देंगे" मैं चुप हो गया । किन्तु इससे चित्त शांत नहीं हुआ । चित्त अर्थ जानने के लिये व्याकुल हो रहा था । बड़ा बनने की इच्छा भी बहुत बढ़ रही थी । पिताजी की बड़ी-बड़ी मूँछें देखकर में भी मन ही मन विचारता था कि मैं भी मूँछे बढ़ जाने पर बड़ा हो जाऊंगा । अहा ! बचपन कैसा विलक्षण होता है, उसकी रमणीयता अज्ञान से ही खिल उठती है । बचपन में जिन बातों का बड़ा महत्व होता था । आज उनके स्मरण आने पर हंसी सी छूट पड़ती है, अस्तु ।

रात हुई । घर के सब लोग सो गये । मैं भी अपने छोटे से मंजे पर लेट गया । किन्तु नींद चिर समय पर्यन्त नहीं आयी । मैं विचार कर रहा था—क्या महिम्न का अर्थ बच्चों को नहीं आ सकता ? क्या वह बड़ा होने पर ही आ सकता है ? कई प्रकार के विचार किये कुछ स्थिर न हो सका । अन्त में नींद कब आयी यह ज्ञात ही नहीं हुआ । किन्तु मैं गाढ़निद्रा में आनन्दमग्न हो गया था । बचपन की नींद कितनी मीठी होती है, इस बात को सभी जानते हैं, किन्तु उसको व्यक्त करना उसकी मिठास को न्यून करना है । सोते-सोते एक स्वप्न देखा—

मैं छोटा सा ही हूँ । एक नदी के कूल पर खड़ा हूं । नदी बहुत बड़ी है, पानी उसका बड़े वेग से बह रहा है । जल बहुत ही निर्मल है । थोड़ा पानी मैंने पिया । बड़ा मीठा और निर्मल जल पीने से चित्त अत्यन्त प्रसन्न हो रहा था । पानी पीकर मैं तट के ऊपर चढ़ आया, वहां देखा कि एक बड़ी-बड़ी मूंछें तथा लम्बी दाढ़ी वाला बूढ़ा खड़ा है । लम्बे-लम्बे सुनहले तथा श्वेत सिर के बाल पीठ पर लटक रहे थे । दाढ़ी भी श्वेत सुनहली घनी तथा लम्बी थी । मूंछें भी पाण्डुता तथा पीलापन धारण कर रहीं थीं । वे एक धोती पहने थे । कंधे पर केवल एक अंगोछा ही था । पास ही एक मिट्टी की गागर पड़ी थी, एक कमण्डलु भी पास

ही पानी से भरा धरा था। वे दोनों हाथ ऊपर किये हुये सूरज की ओर देख रहे थे। साथ ही मुख से कुछ पढ़ भी रहे थे। उन्होंने अब मेरी ओर देखा। देखकर सस्मित मुख से मुझसे कहा —"तुम कुछ पढ़े हो ?" मैंने कहा–'जी, हाँ ! शिव महिम्न पढ़ा हूं और भी बहुत से श्लोक तथा स्तोत्र जानता हूं। "उन्होंने कहा—"सुनाओ, मैंने कहा—'आप जो श्लोक सुनाने को कहें वही सुना दूंगा।' इस पर उन्होंने कहा —'अच्छा, "मनः प्रत्यक् चित्ते' यह श्लोक सुनाओ।" मैंने भी सुना दिया। इस समय हम दोनों ही धरातल पर बैठे थे। नदी तथा आसपास के प्रदेश की शोभा देख रहे थे। वे धीरे-धीरे चुपचाप शून्य से हो रहे थे। मैंने देखा उनकी आंखों से छलछलाता अश्रुप्रवाह मूंछों और डाढ़ी को धो रहा था। मुख पर आनन्द की उज्जवलता तथा स्निग्धता बढ़ रही थी। इस समय उनका मुख कन्दूरी फल के समान लाल हो रहा था। मैं एक टक लगाये उनकी ओर देख रहा था। मेरे मन में आया मैं इनसें एक बार महिम्न का अर्थ पूछकर देखूं। ये तो दाढ़ी मूंछों वाले हैं, बड़े हैं, ये अवश्य ही अर्थ को जानते होंगे। वे सहसा ठहाका मारकर हंस पड़े। फिर कहने लगे—"अहा ! तुम बहुत सुन्दर पढ़ते हो तुम्हारा श्लोक पाठ सुनकर यह नदी और यह जंगल भी प्रसन्न हो रहा है।" मैंने कहा —"बाबा जी ! इस नदी का नाम क्या है ?" उन्होंने कहा—"ऋभु" मैंने कहा—'आप कहां रहते हैं ?' उन्होंने कहा—"इसी के तीर पर।" फिर मैंने कहा–बाबाजी ! क्या महिम्न का अर्थ बच्चों को नहीं बतलाया जाता ?" उन्होंने कहा - 'क्यों नहीं।' मैंने कहा–'मेरे पिताजी ऐसा कहते हैं।' वे फिर गम्भीर भाव से कुछ हंसे और कहने लगे —"तुम्हारे पास महिम्न की पोथी है न ?" मैंने कहा–"नहीं-हमको बिना पोथी के पढ़ाया है।' 'उन्होंने कहा-"पोथी पढ़ सकते हो ?' मैंने कहा—'हां पढ़ सकता हूं।' उन्होंने पूछा 'तुम कै वर्ष के हुए ?' मैंने कहा-'दो महीने के अनन्तर छठा वर्ष लग जायेगा।' उन्होंने कहा—'ओह ! तब तो तुम अर्थ समझ सकते हो। देखो ध्रुव तो पांच ही वर्ष का था जब वह भगवान के दर्शनों के लिये जंगलों में चला गया।' ऐसा कहकर वे चुप हो गये। मैं देख रहा था, वे पुनः शून्य से हो रहे थे, आंखों से आंसू बह रहे थे, मुख वैसा ही लाल और आनन्द से स्निग्ध हो रहा था। थोड़े समय के पश्चात वे सचेत हो गये और मुझे अंक में लेकर मुख चूमने लगे। उनकी दाढ़ी और मूंछों की चुभन से मैं घबरा सा गया था। वे कभी सिर पर हाथ फैरते थे, कभी मुख पर, कभी सारे ही शरीर पर, कभी गले से चिपटा लेते थे, मैं अंक में ही था किन्तु अर्थ अभी बताया ही नहीं था उनकी मूंछों का बाल मेरे गाल में चुभ गया था, नींद खुल गई, सपना टूट गया। प्रातः काल हो गया था, सूरज निकल रहा था। मैं जाग पड़ा, स्वप्न की बातों को स्मरण कर रहा था एक एक कर के सब बातें स्मृतिपटल पर आ

गई। किन्तु यह क्या हो गया समझ में नहीं आया। समवयस्क साथी भी जाग रहे थे हम अब नित्य के खेल-कूद में फिर लग पड़े, किन्तु स्वप्न की बातों से चित्त और भी अशांत तथा उद्विग्न सा रहने लग गया था। मैं जितनी भी वस्तुओं को घर में देखता था या जिन कुटुम्बियों को देखता था, उनमें से किसी के साथ भी मुझे प्रेम नहीं था। कोई भी मुझे अपना प्रतीत नहीं होता था। इसी कारण मैं बहुत थोड़ा बोला करता था। सभी पराये से लगते थे। किसी-किसी दिन घटों तक एक ओर बैठकर मन ही मन कुछ सोचा करता था। किन्तु घर वाले उसका रहस्य नहीं समझ सकते थे। न ही मैंने कभी किसी से कहा। समय आने पर इसका रहस्य भी लोगों को ज्ञात हो जायेगा, अस्तु।

उस दिन सांयकाल में देव-दर्शन के लिये अपने पिताजी के साथ गया था। चार पांच मील दूर उस स्थान पर घोड़ा-गाड़ी से ही गये थे। वहां भगवती के दर्शन किये फूल पैसा चढ़ाया। पुजारी ने माला प्रसाद रूप में मेरे गले में डाल दी। मैंने भी मन ही मन प्रसन्न होकर भगवती से प्रार्थना की। उस दिन मंगल वार था। वह प्रार्थना यह है—

दुर्गे ! स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि।
दारिद्रयदुःखभयहारिणि ! का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता ॥

[हे दुर्गे ! आपका स्मरण भयभीत होकर यदि कोई भी करे तो उसका भय आप दूर कर देती हो। आप उस समय यह कभी नहीं सोचती है कि यह मनुष्य है अथवा पशु-पक्षी। यह विद्वान है अथवा मूर्ख, आप जांति-पांति कभी नहीं देखती है। केवल देखती हो कि यह प्राणी भयभीत है और मेरा स्मरण कर रहा है ! स्वस्थ दिशा में जो आपका स्मरण करते हैं उन्हें परम कल्याण-कारक मति आप प्रदान करती है। सभी प्रकार के लोगों का तथा सभी प्रकार का परम कल्याण करने के लिए आप से अन्य इस संसार में कौन समर्थ है। दारिद्र, दुःख तथा भय को दूर भगा देना यह तो आपको सहज स्वभाव ही है। कारण, आपका चित्त सर्वदा दया से भरा रहता है।

यह प्रार्थना का महामंत्र भी प्रतिदिन के स्तोत्र पाठ में ही था। उस समय अर्थ ज्ञान न होने पर भी इतना अवश्य ज्ञात था कि यह भगवती की प्रार्थना है तथा इसके पढ़ने से जगज्जननी प्रसन्न होती है। मन में उसी स्वप्न की सारी घटना का विवेचन कर रहा था। भगवती के मन्दिर की परिक्रमा की। बाहर की पैड़ो पर क्षणभर बैठकर फिर गाड़ी में चढ़कर घर को चल पड़े। मार्ग में

पिताजी से मैंने कहा—"मुझे महिम्न की पोथी लेनी है।" पुस्तक विक्रेता से तीन ग्राने की पुस्तक क्रय कर ली। इस पुस्तक का मुद्रण वेंकटेश्वर मुद्रणालय बम्बई में हुग्रा था। इसमें भाषा में भी ग्रर्थ था। मैं बहुत प्रसन्न हुग्रा। मैंने कई बार ग्रर्थ सहित महिम्न पढ़ा है। स्वप्न के श्लोक का पाठ करते समय स्वप्न की घटना प्रत्यक्ष सम्मुख खड़ी हो जाती थी। तथा इतनी तन्मयता हो जाती थी कि क्या कहूं। उसका वर्णन वाणी से परे की वस्तु है। उस स्वप्न की घटना का उट्टंकन ग्राज पर्यन्त मैंने किसी के पास नहीं किया। किन्तु "ऋ मु" के विषय में जानने की बड़ी उत्कण्ठा थी। कई लोगों से पूछा किन्तु "ऋ मु" का संकेत कुछ नहीं मिलता। ग्रनन्तर कुछ मास बीत चुके थे। एक दिन महिम्न का पाठ कर रहा था घर के कई लोग वहीं बैठे थे, पाठ करते-करते जब उस श्लोक को पढ़ा तो वही स्वप्न सम्मुख हो गया। ग्रब मैं बार-बार उसी श्लोक को दुहराने लगा। तीन चार बार पढ़कर चुप हो गया। तथा सहसा ग्रोज से (जोर से) हंसने लगा ग्रौर फिर चुप हो गया। भगवान जाने घर वाले क्या समझे होंगे। मेरा मुख लाल हो गया था। ग्रनन्तर जब मैं सचेत हुग्रा तो देखा मैं ग्रास्तरण (बिछौने) पर पड़ा हूं। मुझे बड़ा भारी ज्वर हो रहा था। पिताजी नाड़ी देखकर कह रहे थे—"ज्वर बहुत है।" किन्तु मुझे उस समय बहुत भूख लग रहा थी, मैंने थोड़ा पानी ही पी लिया। स्वप्न के बाबाजी तथा नदी की स्मृति से चित्त व्याकुल हो रहा था। ग्रस्तु।

तीन चार दिन के ग्रनन्तर ज्वर ठीक हो गया, परन्तु व्याकुलता भीतर ही भीतर वैसी ही थी। पिताजी ने समझा "इसको कोई भय हो गया है।" कारण मैं नींद में सहसा चौंक उठता था तथा कुछ बड़बड़ाता था। उन्होंने कुछ पाठ करके मंत्र से ग्रभिमंत्रित भस्म मेरे शरीर में लगायी थी, साथ ही मुझसे कहा था—"श्मशानेष्वाक्रीड़ा" इस श्लोक का पाठ करते जाना–सब भय दूर हो जायेगा। साथ ही धूप ग्रादि भी जलाई थी। इस कारण ग्रब मैंने भी उस घटना का चिन्तन छोड़ दिया था, किन्तु उस चिन्तन ने मुझे नहीं छोड़ा। ध्रुव चरित्र सुन लिया था। मेरी मातामही ने सविस्तार उसकी कथा सुनायी थी। "ऋ मु" का संकेत उससे भी न मिला। दो बार भाग निकलने का भी प्रयत्न किया था, किन्तु ग्रसफल रहा। साढ़े नौ वर्ष की ग्रवस्था में सिन्धु महानदी के दर्शन किये थे, उसका पानी पीने के ग्रनन्तर उसके तीर पर खड़े-खड़े उसी पुराने स्वप्न की घटना पर विचार किया था। किन्तु ग्रब भागने साहस नहीं था। पढ़ने में भी जी नहीं लगता था। बुद्धि तीव्र होने के कारण पाठ शीघ्र कण्ठस्थ हो जाया करता था यह बात ग्रलग है। ग्रस्तु।

ग्रब भी सम्पूर्ण महिमन् स्तोत्र में मेरे सर्वाधिक प्रिय श्लोक के पाठ के समय मुझे महान् ग्रानन्द ग्राया करता है ग्रौर वह स्वप्न नया हो उठता है।

किसी भी भयप्रद स्थान में "श्मशानेष्वाक्रीड़ा" का पाठ भी मैं किया करता हूं। उससे मुझे पर्याप्त लाभ हुआ है। "श्री स्वाध्याय" के प्रेमी पाठक भी इसके पाठ से लाभ उठा सकते हैं। वह श्लोक इस प्रकार है :—

श्मशानेष्वाक्रीड़ा स्मरहर ! पिशाचा : सहचरा :
चिताभस्माऽऽ लेप : स्त्रगपि नृकरोटीपरिकर : ।
अमंगल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं
तथाऽपि स्मर्तृणां वरद ! परमं मंगलमसि ॥

(हे ! अशुद्ध वासनाओं को भगाने वाले परमात्मन् ! परशम्भो ! आप श्मशानों में बिहार करते हैं। आपके सहचर हैं पिशाच, आप सारे शरीर पर चिता भस्म लेपते हैं। ममुष्य-सिर कपालों की मालायें आप धारण करते हैं। इस प्रकार आपकी रहन-सहन घिनौनी अमंगलसी हैं, किन्तु आपका सारा ही आचरण यद्यपि अमंगल रूप ही है तो भी आपके स्मरण करने वालों के लिये आप परम मंगल रूप हो जाते हो। कारण आप भक्तों को वरदान दिया करते हो। अतः आपका आचरण महान् अमंगल रूप यदि किसी दृष्टि में है तो रहता रहे, हमारे लिए तो आप परम मंगलरूप ही हैं, क्यों कि हमें मन मांगा देते रहते हो।)

स्वप्न के बाबाजी का तथा "क्रुमु" का दर्शन पुनः कभी नहीं हुआ, किन्तु आज से लगभग सात वर्ष पूर्व की बात है, एक बन्नू का रहने वाला ब्राह्मण कुमार लाहौर में मिला था। उसके साथ बात-चीत हो रही थी। उसने बन्नू आने के लिये प्रार्थना की। उस पर मैंने कहा—"तुम्हारे यहां की जलवायु कैसी है ? उसने उसी प्रसंग में कहा कि—"हमारे नगर के पास ही कुर्रम नदी बहती है" कुर्रम नदी सुनते ही सहसा बचपन की स्वप्न स्मृति जाग उठी। अपने मन ही मन मैंने कुर्रम को अपना "क्रुमु" मान लेने का साहस किया है। कई बार उसके दर्शन का विचार किया, किन्तु अद्यापि सफल नहीं हुआ हूँ। एक वैदिक मंत्र में नदियों के नामों के साथ "क्रुमु" नाम भी आया है किन्तु यह कुर्रम ही है अथवा और कोई इसके संबंधों में विद्वानों का निर्णय क्या है, यह ज्ञात नहीं। मेरा अपना विचार तो मैंने प्रकट कर दिया है। अस्तु।

लीजिये अब वह मेरा सर्वाधिक प्यारा श्री शिवमहिम्नस्तोत्र का श्लोक भी सुन लीजिये——

मन : प्रत्यक्चित्ते सविधमवधायात्तमरुत : ।
प्रहृष्यद्रोमाण : प्रमदसलिलोत्संगितदृश : ।
यदा ऽऽलोक्याह्लादं हृद इवनिमज्ज्या मृतमये
दधत्यन्तस्तत्वं किमपि यमिनस्तत्किल भवान् ॥

(संयमी पुरुष मन को पश्चिम मुख चित्त में उन सभी प्रकार के अनुकूल

विधानों से स्थिर करने के अनन्तर प्राणवायु को वश में कर लेते है। अनन्तर वे योगी शांत चित्त होकर किसी अनिर्वचनीय रहस्यभूत तत्व का अपने आप में साक्षात्कार प्राप्त करते हैं जिसके साक्षात्कार से एक महान् विलक्षण आनन्द प्राप्त होता है. मानो अमृत से भरे बड़े भारी ह्रद (प्राकृतिक अगाध तालाब) में डुबकी ही लगा ली है। इस समय उनके शरीर के रोम-रोम में हर्ष हो रहा होता है, तथा आनन्दाश्रुओं से उनकी आंखें डबडबायी रहती हैं। इस प्रकार के असीम आनन्द सागर में बारम्बार डुबकियां लगाते हुये वे जिस अगाध रहस्य भूत वस्तु तत्व को अपने आप में धारण करते हैं, हे भगवन् ! वह वस्तु तत्व आप ही हैं। ऐसा उन तत्वदर्शी परमशांतिमान परिपूर्णानन्द निमग्न महात्माओं का निश्चय है।)

"श्री स्वाध्याय" के प्रेमी पाठकों ! यह श्लोक मेरे हृदय का जीवन सर्वस्व है। मैने इसका आनन्द प्रत्यक्ष स्वयं अनुभूत किया है। बचपन में स्वप्न के बाबाजी की दशा जो "ऋभु" के तीर पर स्वयं मैने देखी है वह अब कभी-कभी स्वयं अनुभूति में आने लग गई है। किन्तु बाबाजी का पुन: दर्शन न होना बड़ा अखरता रहता है। अहा ! वे बाबाजी कितने दर्शनीय थे। उनका अपने उत्संग में लेकर मुझे प्यार करना कभी भी मैं भूल नहीं सकता।

वाह ! वाह !! मैं भी महान् धन्य हूं। इस लेख से पाठक भी अवश्य लाभ उठायें। यह बात आज मैने सर्व प्रथम प्रकट की है। मेरे जीवन में ऐसी घटनायें घटी हैं उनके स्मरण मात्र से मैं भी आश्चर्य चकित हो जाता हूं। यथा अवसर उन पर प्रकाश डाला जायेगा। शिवमस्तु"।

(श्री स्वाध्याय से)

इसी प्रकार पू० बाबा महाराज के बाल जीवन की दूसरी झांकी भी उन्हीं के शब्दों में यहाँ प्रस्तुत है—

जन्म तथा मरण ये दोनों ही जीवन के ओर-छोर हैं। जीवन का प्रारम्भ जन्म तथा अन्त मरण नाम से संबोधित किया जाता है। आत्मानन्दनाथ का जीवन अनादि एवं अनन्त है। जीवानन्दनाथ का जीवन जन्म तथा मरण नाम दो अवस्थाओं के मध्य में आबद्ध है। इसकी जीवन तरंगिणी शिवानन्दनाथ के मानस सरोवर से स्रोतस्विनी बनी है, ऐसी जन श्रुति अनन्त समय से चली आ रही है। शिवमानसरोवर को उसका अपना जीवन उस सच्चिदानन्दकन्द महान् पर-शिवसागर से अज्ञात काल–धन की कृपा से प्राप्त हुआ था, ऐसा कहा जाता है। क्षुद्र से लेकर बड़े से बड़े पर्यन्त जीवों की जीवन तरंगणियां अन्त में उसी महान् शिवसागर में आत्म-समर्पण कर देती है, घुलमिल जाती है, उसके साथ समरस हो सामरस्य का आनन्द लूटती है। इसी में सबको पूर्णानन्द सिद्धि हुआ करती है। परिपूर्ण में एकत्व तथा अनेकत्व परिपूर्ण से भरा पड़ा है। जीवानन्द को जीवानन्द की तथा शिवानन्द को

शिवानन्द की उपलब्धि स्नसंकल्पानुरूप इसी से सदा ही होती रहती है। अवस्थाओं के द्वन्द्व से आबद्ध जीवन जन्म कहा जाता है। जन्म की व्याख्या अपनी विवक्षा के आधीन है।

मेरे अपने इस आबद्ध जीवन (जन्म) के नौ चौमासे बीत लिये थे। बाल-सुलभ चापल्य वैसे ही मुझ में न्यून मात्रा में था। अब तो और भी अल्प हो रहा है। उधम में मैं भी समवयस्कों का हाथ बटाया नहीं करता था ऐसी कोई बात न थी, किन्तु दूर-दूर से अलिप्त से होकर ताश के कई खेलों में प्रावीण्य हो गया था। पतंग उड़ाना प्रायः प्रतिदिन का कर्तव्य सा बन गया था। बुद्धिबल (शतरंज) में बल था। क्रिकेट भी अच्छा खेल लेता था किन्तु गोलियों के लट्टू घुमाना भी जानता था। हां, चक्री फेरना कुछ अच्छा आता था। अब तैरना भी काम के योग्य जान गया था। चौसर पर्याप्त खेला करता था। कौड़ियों के तथा पासों के कई खेल आ गए थे, किन्तु सभी प्रकार के खेल कूदों में यथा अवसर सम्मिलित होने पर भी चित्त किसी में भी नहीं लगा करता था। चित्त उदास सा ही रहा करता था। एकान्त में बैठकर लंबे-लंबे निश्वास लिया करता था घर वालों की दृष्टि में कभी-कभी यह बात अवश्य आ गई थी, वे इसको अपशकुन मानते थे। इसका कारण भी वे कई बार पूछ चुके थे। मेरा उत्तर मौन से अतिरिक्त कुछ भी न होता था। बहुत प्रयत्न करने पर भी इसका निदान वे न जान सके। मेरा शरीर कभी भी हृष्ट-पुष्ट न हो सका। इसका प्रधान कारण शरीर यष्टि की स्वाभाविक अशक्तता ही मुझे प्रतीत हुई। खाने-पीने की प्रतिकूलता भी न थी। लोग कहा करते थे कि मातृ-दुग्ध से वंचित बालक पुष्ट नहीं होते। प्रतिदिन कोई न कोई रोग शरीर को घेरे ही रहता था। अमरकोष, शब्दरूपावली, अष्टाध्यायी (पाणिनीय) आदि कई छोटी-मोटी पुस्तकें अब कण्ठस्थ हो चुकी थीं। पढ़ने के लिए किसी पाठशाला में नहीं जाना पड़ता था। ननसाल में रहते हुए कुछ पढ़ाई हिन्दी पाठशाला में भी पढ़ी। सवा चार वर्ष की अवस्था में एक वैतनिक शिक्षक के पास पढ़ने के लिए जाना पड़ता था। उसकी लाल लाल बड़ी-बड़ी आंखों को देख कर एवं उसके "क्यों रे" के शब्द को सुनकर मैं बहुत ही भयभीत हो जाता था। शरीर में कंपकपी छूटती थी, मूत्र निकलने लगता था, ज्वर चढ़ जाता था। उसके पास पढ़ने से मैंने अस्वीकार कर दिया। हठात् उसके पास पहुचाने पर चुपके से भागने के लिए प्रकृति विवश करती थी। उर्दू वर्णमाला अब सर्वथा भुला दी गई थी। हिन्दी, संस्कृत, इतिहास, भूगोल, गणित आदि सभी विषयों में प्रायः समान रूप से प्रतिभा चलती थी। अस्तु।

उपनयनसंस्कार बड़े ठाठ-बाठ से हो चुका था। वेद माता श्री गायत्री की दीक्षा विधियुक्त मिल गई थी। सन्ध्योपासन यथा विधान तीनों समय करना होता था। कुछ रहस्यान्तर भी उसी समय यथा सम्प्रदाय पूज्य श्री पिताजी से प्राप्त हुआ था। "श्री पंचस्तवी" का "लघुस्तव" नित्य पाठ में आ गया था। इस बात का ज्ञान

हम पिता-पुत्रों के अतिरिक्त किसी को न होने पाया। इसका कारण पूज्य पिताजी की आज्ञा ही थी। अस्तु।

एक दिन की बात है, सम्भवतः श्रावण मास का कृष्ण पक्ष था। तिथि अज्ञात के गर्भ में विलीन हो चुकी है। गर्मी पर्याप्त मात्रा में थी। अपरान्ह का समय हो रहा था। पिताजी विश्राम कर उठ चुके थे। मैं भी उन्हीं के पास लेटा था, मुझे नींद नहीं आ रही थी। उन्होंने हाथ मुंह धोये। मैने भी हाथ मुंह धोये। वे चटाई पर बैठ गये, पास मैं भी। "श्री पंचस्तवी" की पोथी पड़ी थी। हस्तलिपि सुन्दर तथा सुवाच्य भी थी। पोथी मैंने उठा ली। दूसरा स्तव पढ़ने लगा। श्लोक पाठ की रीति मुझे स्वाभावतः पूर्व संस्कारों से ही प्राप्त हो गई थी। स्वर मधुर था। छन्द शास्त्र न पढ़ने पर भी गुरू लघु की त्रुटि तथा मात्रा और अक्षरादि के न्यूनाधिक्य भाव का ज्ञान भी कुछ स्वाभवतः प्राप्त हो गया था। मेरे पाठ के सुनने वाले श्रोता लोग मुग्ध हो जाया करते थे। इस बात पर मुझे भी उचित गर्व था। कुमुनीर के निवासी स्वप्न के बाबाजी से भी श्लोक पाठ के लिए मुझे साधुवाद मिले हुये थे। "चर्चास्तव" सारा पढ़ डाला। बातों बातों में सुन रक्खा था कि स्वर्ग में कल्पवृक्ष होते हैं श्री रामायण, श्रीमदभागवत, श्रीमद्महाभारत आदि की कथाएँ बहुत सुन रक्खी थी। मातामही से सैकड़ों कथाऐं सुन चुका था। वह एक बड़ी विदुषी वृद्धा थी। सहसा "कल्पद्रुम" श्लोक पढ़ते समय कल्पवृक्ष की बात स्मृतिटल पर समक्ष हो आई। मैंने अपने पिताजी से उस श्लोक का अर्थ पूछा। मैने कहा, "पिताजी! इस श्लोक का अर्थ क्या है?" अब की बारी पिताजी ने श्लोक के अर्थ को बताने से अस्वीकार नहीं किया। उन्होंने उसका अर्थ बता दिया। अर्थ संक्षिप्त सा ही था। जिन शब्दों में उन्होंने अर्थ बताया था, उन शब्दों की अनुपूर्वी को दौहराना अब असंभव है। उसे मूल भी चुका हूं। अब उस अनुपूर्वी की आवश्यकता भी प्रतिभासित नहीं होती। अर्थ सुनते ही शरीर शून्यसा हो गया। हृदय में एक कोई विलक्षण व्याकुलता होने लग पड़ी। शरीर में झन्नाहट हो रही थी और न जाने क्या हो गया। मैं अचेतसा हो वहीं चटाई पर ही गिर पड़ा। किन्तु शीघ्र ही सचेतन हो गया। पिताजी बहुत घबरा गये थे। मुझे प्रस्वेद (पसीना) हो रहा था। मेरे शिर पर एवं मुख पर भी पानी के छींटे दिए गए थे। नाक दबाई गई थी। ये सब बातें मुझे चेतना आने के पश्चात् ज्ञात हुई। मैंने आंखें खोलकर देखा, वहाँ तीन चार मनुष्य बैठे थे। किसी ने कहा, "यह अपस्मार (मिर्गी) है" किसी के मत में ऊपरी भतादि की बाधा थी। पिताजी को बहुत चिन्ता हो रही थी। उन्होंने नाड़ी देखकर कहा, "नाड़ी तो ठीक है, थोड़ी पित्त की अधिकता के अतिरिक्त कुछ नहीं।" मैं अब भली-भांति सावधान हो गया था। पिताजी ने बहुत पूछा। किन्तु मैं कुछ भी न बता सका कि मैं अचेतन क्योंकर हो गया था। हृदय की व्याकुलता से अन्य मैं स्वयं भी कुछ न जान पाया था। सब लोग समझ रहे थे कि यह मूर्छा रोग है। घरवालों

के तथा अन्यान्य सम्बन्धियों के कहने पर डाक्टर से परीक्षा कराई गई। किन्तु डाक्टर ने कहा, "इसको कोई भी रोग नहीं हुआ है।"

"श्रीपंचस्तवी" के उस श्लोक के पाठ करते समय मुझे प्रत्येक बार हृदय में एक विलक्षण अज्ञात व्याकुलता हो जाया करती थी। हृदय में चींटियों के काटने की सी पीड़ा हुआ करती थी। एकान्त में पढ़ने पर रोना आने लगता था। रोते-रोते मैं सिसकियां भरने लग जाया करता था। घर वालों ने एकान्त में चुपके रोते देख लिया था। उन्होंने इसका निदान मातृस्मृति निश्चित कर रक्खा था। वे लोग मुझे सान्त्वना भी दिया करते थे, किन्तु उससे क्या बनता। जबकि रोग का निदान ही ज्ञातन था। रोग कुछ अन्य ही था, औषधि उसके विपरीत थी। अब जिसका कारण ज्ञात हो चुका था। अब तो उसके पढ़ते समय अत्यधिक आनन्द आया करता है। बारम्बार पढ़ने पर भी चित्ततृप्त ही नहीं होता। तृप्ति न होने पर भी दु:ख सर्वथा भूल जाता है। ज्ञान होने पर संयोग तथा वियोग दोनों ही आनन्ददायक हो जाया करते हैं। दोनों का पर्यवसान आनन्द में ही निहित है, किन्तु अज्ञान सभी अनर्थों की जड़ है। यों तो बीज इसका भी आनन्द ही में प्रस्फुटित होता रहता है। इसी घटना के कारण "पंचस्तवी" के उस श्लोक से अत्यधिक प्यार है। अब भी मैं उसे प्रेम से पढ़ा परता हूं। "श्रीपंचस्तवी" का वह श्लोक मेरी अपनी जीवन की एक झांकी है। विज्ञ पाठकों को यह संकेत समझते चिर न चिर न लगेगा। वह श्लोक पूरा इस प्रकार है।—

कल्प द्रुमप्रसवकल्पित चित्र पूजा—
मुद्दीपित प्रियतमामदुरक्तगीतिम्।
नित्यं भवानि ! भवतीमुपवीणयन्ति
विद्याधरा : कनकशैलगुहागृहेषु ॥

(निखिल संसार तथा उसके मूल जनक परशिव के अनन्त जीवन की परमाधार आप ही हैं। इसी कारण आपको "हे भवानि ! इस प्रकार से विद्वान लोग आमन्त्रित करते हैं। "विद्याधर" विद्याधर है। "विद्यया-मृतमश्नुते" विद्या से अमृतत्व की प्राप्ति होती है। उस विद्या को विद्याधर निरन्तर धारण करते हैं। जिनकी धरा (जन्मभूमि) ही विद्या हैं। उनको अमृतत्व तो स्वाभाविक होना ही योग्य है। इसलिए देव योनियों में विद्याधर सर्वश्रेष्ठ हुये हैं। कारण वे आपके कामकला स्वरूप को भली-भांति जानते हैं। पर—शिव का यह काम-कला स्वरूप अद्भुत सुन्दर है। इसीलिए आपके इस रूप को श्रीमहात्रिपुर-सुन्दरी कहते हैं। भोग और मोक्ष दोनों ही समान भाव से विद्याधरों के करगत है। कारण वे आपके सौन्दर्य की उपवीणना नित्य करते हैं। आपमें तथा विद्याधरों में नाम मात्र के लिए कल्पित भेद भले ही हो किन्तु वस्तुतः वे भी आपकी उपवीणना से अपने आपकी ही उपवीणना करते

रहते हैं। अतएव वे विद्याधर है। वे स्वयं विद्याधर होने के कारण धर्म नामक पुरुषार्थ की उन्हें स्वाभाविक सिद्धि है। धर्म का ज्ञान करने के लिए उन्हें कहीं अन्यत्र नहीं जाना पड़ता। कामकला के उपवीणन ने उन्हें विद्याधर बना दिया है। उपवीणन की सामग्री भी इनके पास सर्वदा सिद्ध ही रहती है। इधर-उधर कहीं भटकना नहीं पड़ता।

विद्याधर आपकी पूजा कल्पवृक्षों के पुष्पों से करते हैं। यह अपने आपकी उपवीणना के लिए की गई पूजा विलक्षण होती है। इसका वर्णन करने मेंवाणी की वाणी भी असमर्थ है। पूजा के लिए आपका यथेष्ट चित्र यह स्वयं कामकला में निर्माण कर लेते हैं। आपके इस चित्र की रचना में इनकी कल्पना को भाँति-भांति के कल्पवृक्षों के पुष्प रंग-रूप की सहायता देते रहते हैं। जिनके पास अपनी सत्ता के (स्वत्व के) कल्पद्रुम हों, स्वयं विद्याधर हों तथा नित्य अपनी आत्मरूप काम-कला का उपवीणन होता हो तो पूजा के लिए चित्र की रचना कौनसी कठिन या असंभावनीय सी बात है? कामकला के अभ्यासी को सभी कलाओं में चातुर्य प्राप्त हो जाता है, तो चित्र पूजा की सिद्धहस्तता में क्या चित्र (आश्चर्य) है? हे भवानी! विद्याधरों के लिए आप 'कल्पद्रुम' हैं। वे लोग आत्मसम्प्रदायानुसार महान यज्ञों से आपकी विलक्षण संभावना किया करते हैं। इस विलक्षण संभावना को पूजा रूप से भली-भाँति जानते है। आदि वर्णमाला से रचित आपके चित्र की पूजा का रहस्य भी वे सम्यक जानते हैं। अतएव पर—शिव—स्वरूप में उत्पन्न होने वाले उसमें रहने वाले तथा अन्त में उसी में विलीन होने वाले अनन्त पदार्थ सार्थ से विलक्षण पूजा करना यह एक उनकी स्वाभाविक बात हो गई है। अतएव वे नित्य मुक्त हैं। पुनः कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुम सामर्थ्य प्राप्त है। नित्य मुक्त को मोक्ष की कामना की संभावना कैसे हो सकती है? कामकला के उपवीणक विद्याधरों की प्रियाएं, प्रियाएं ही नहीं अपितु प्रियतमायें हैं एतदर्थ उनमें सभी प्रकार का मद (हर्ष) होना स्वाभाविक है। विद्याधरों के प्रेम का एकमात्र आयतन बनना यह उनके लिए चारों ओर से हर्ष का कारण है। यह हर्ष विद्याधरों की हुई उस विलक्षण पूजा से और भी उद्दीपित हो गया है अतएव गीति (गान) को भी अत्यन्त शोभा प्राप्त हुई है। विद्याधरों की प्रियतमाओं का स्वरसानुभव से रंजित गान उद्दीपित हो गया है। इनका अपना इस विलक्षण पूजन से अत्यन्त अभीष्ट सर्वतोभाव का आनन्द उद्दीपित हो गया है, इसी से उनका अपना गान भी अतिशोभित हो रहा है। गान विद्या में कुशल सर्वदा आनन्दमय रूप में रहने वाली आलस्य प्रमादादि दोषों से रहित, इनकी प्रियतमायें कामकला के उपवीणन में नित्य तत्पर इनके पास हैं। अतएव काम नामक पुरुषार्थ की सिद्धि भी इन्हें निरन्तर प्राप्त ही है। सुवर्ण शैल की गुहाओं में इनके गृह हैं। इनके घर ही जब सोने के पर्वतों की गुफाओं में हैं तथा सम्पूर्ण गृह सुवर्ण से ही निर्मित है तो धन की न्यूनता की संभावना को यहां स्थान ही कहां? हे

भवानी ! कामकला का उपवीरण क्या नहीं कर सकता ? हे भवानी ! आपने उनको विद्याधर पद पर प्रतिष्ठित किया है, उनके धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष नामक चारों पुरुषार्थ सहज सिद्धि हो गए है इसी कारण विद्याधर सर्वदा आपके उपवीरण के अतिरिक्त कोई कार्यान्तर नहीं करते । करें भी क्या ? आपके चिदानन्देच्छाज्ञान-क्रियामय-स्वरूप में वे समाविष्ट होकर सामरस्यानन्द का उपभोग निरन्तर करते रहते हैं । वस्तुतः सर्वत्र सर्वरूप से आत्मानन्द की उच्छलता में आत्मातिरिक्तता की शंका भी नहीं होती । हे अपने आप रूप जीवन अति धन्य है ।]

प्रेमी पाठकों ! मेरी इस घटना ने मुझे अब सावधान कर दिया है । नव वर्ष की अवस्था में पहले-पहल इस श्लोक के अर्थ के सुनने पर मैं निश्चेतन सा हो रहा था, घर वालों की दृष्टि में रोगग्रस्त सा हो गया था । महामाया की कृपा है, अब जीवन नित्य निरन्तर आनन्दमय हो रहा है । इस श्लोक में अनेक गूढ़ रहस्य भरे पड़े हैं ।

बालक वैद्यनाथ की संपूर्ण शिक्षा-दीक्षा काशी में ही सम्पन्न हुई । व्याकरणाचार्य के अतिरिक्त अन्य कई विषयों में भी आचार्य परीक्षायें प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कीं । उनकी प्रतिभा से सभी चमत्कृत थे । योग और तंत्र के महान् गवेषक महामहोपाध्याय डाक्टर गोपीनाथ जी कविराज उन दिनों वाराणसी कुईन्स कॉलेज (जो वर्तमान में संस्कृत विश्वविद्यालय के नाम से जाना जाता है ।) के प्राचार्य थे । वे भी युवक वैद्यनाथ की लोकोत्तर प्रतिभा के कारण उनसे अपरिमित स्नेह करते थे । कालांतर में यही युवक जब अमृताग्भव आचार्य के रूप में उनके सामने आयातो स्नेहातिरेक से वे हर्ष विभोर हो उठे । कारण यह था कि पूज्य बाबामहाराज ने "श्री सिद्धमहारहस्यम्" नामक स्वलिखित पुस्तक उनकी सेवा में प्रेषित की थी । पुस्तक का विषय और रचनाकार की आध्यात्मिक उपलब्धियों को देखकर उन्होंने जो आशीर्वाद प्रेषिक किया वह उल्लेखनीय है :—

महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज
एम. ए. डी. लिट्. पद्मविभूषण

2 (ए) सिगरा, वाराणसी
दिनांक 30-3-1965

सर्वतन्त्रस्वतन्त्रः प्रसिद्धवैदुष्य आचार्यः श्री मान् अमृतवाग्भवनामा सिद्धमहारहस्याख्यया पद्यात्मकं किमपि लघुकायमेकं पुस्तकं निर्माय अनिच्छन्नपि गुरुनिर्देशात् प्रकाश्यं नीतवान् ।

पुस्तकमिदं पत्रसंख्या लघीयस्तया प्रतीयमानमपि महार्घ्यं रत्नोपमगुह्यतत्वगर्भत्वाद् गरीय एव मे प्रतिभाति ।

अद्यत्वे विश्रुतकीर्तिराचार्योऽयं कदाचित् कैशोरान्ते यौवनोन्मेषवयसि पाठशालासंबन्धेन मदीयं वात्सल्यभाजनमासीदिति तथैवाद्यापि भूयोभूयः तं स्मरामि ।

षट्त्रिंशद्वर्षेभ्योऽप्यधिककालं यावत् तस्य देशान्तरावस्थानवशात् दर्शनाभावेऽपि तदीया स्मृतिर्मदीये चित्तदर्पणे पूर्ववदेव समुज्ज्वला भाति। महत्यस्मिन्नन्तरे स्वाचरिततपःप्रभावाद् वा स्वीयप्राक्तनशुभकर्मपरिपाकाद् वा अचिन्त्याहैतुकभगवदनुग्रहबलाद् वा तस्य जीवने महती समुन्नतिः संजाता। नैषा लौकिकी काचिद् प्रतिष्ठा, न वा विद्वद्गोष्ठीषु कोऽपि समादरः, परंतु स्वात्मस्वरूपस्याभिन्नशिवशक्तिरूपस्य निरावरणप्रकाशमार्गे काऽप्यनिर्वचनीया प्रगतिः।

रहस्यग्रन्थावलोकन तो ज्ञायते—कलियुगस्य सर्वादितन्त्रोपदेशकेन अनसूयागर्भसंभूतेन क्रोधभट्टारकसंज्ञकेन भगवता श्री दुर्वाससा मुनिना प्रत्यक्षमाविर्भूय तस्मै पूर्णयोगस्य उपदेशः प्रदत्तः। इममेव योगमवलम्ब्य सर्वेषां योगानां पूर्णत्वं संपद्यते। प्राप्तोपदेशः स ततःप्रभृति दीर्घकालपर्यन्तं नैरन्तर्येण सत्कारेण च पूर्णाहम्भावमाश्रित्य तं योगं सेवमान आसीत्। तदानीमन्तराऽन्तरा तेन बहूनि दिव्यदर्शनानि लब्धानि। यस्मिन् देशे काले च यद् दर्शनंजातं तस्य समुल्लेखः स्पष्टरूपेण विहितः। सर्वमिदं सुगोप्यमपि भगवदाज्ञया जीवकल्याणमभिसन्ध्यायैव संक्षेपेण प्रकटितम्। अस्मात् शक्तिपातपूतसाधाकानां महानुपकारः संभवेदिति मदीयो विश्वासः।

ग्रन्थकृताप्युक्तम् –

श्री संप्रदायोक्तनयक्रमेण सरल्यचेतोहरमात्मशम्भोः।
ये प्रत्यभिज्ञारसमास्तुकामास्ते ग्रन्थमेनं परिशीलयन्तु॥

ग्रन्थकारः श्री विश्वेश्वरकृपया स्वस्थकायः स्वच्छन्दः चिरं जीवन् योग्यशिष्येभ्यः सदुपदेशप्रदानेन लोककल्याणं विदधातु।

—गोपीनाथ–कविराज

बालक वैद्यनाथ जब तीन वर्ष के थे तभी पूज्या माता श्रीमती राधादेवी का शारीरान्त हो गया। माँ के अभाव में बच्चे के लालन पालन का अधिक भार पिता पर ही आ गया। कुछ समय तक तो उन्होंने किसी प्रकार कार्य चलाया किन्तु अन्ततः उन्हें शिशु के लालन पालन के हेतु दूसरा विवाह करना ही पड़ा। दूसरी माता के रूप में श्रीमती–रूक्मिणी देवी ने उन्हें मातृ स्नेह प्रदान किया। कालान्तर में माता रूक्मिणी देवी ने भी एक पुत्र को जन्म दिया। इस द्वितीय पुत्र का नाम रामचन्द्र रखा गया।

पिता श्री कृष्ण शास्त्री संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। संस्कृत के अतिरिक्त वे फारसी और अंग्रेजी भाषा में भी अच्छी गति रखते थे। वे तत्कालीन कुछेक रियासतों के राजकुमारों के शिक्षक रहे। तथा वे अनेक राजनेताओं के तथा स्व० पण्डित मोतीलाल जी नेहरू, पण्डित मदन मोहन मालवीय जी, आदि के निकट

सम्पर्क में रहे। वे अत्यन्त उदार हृदय के थे। दूसरों की सेवा और सहायता करके वे परमहर्षित हुआ करते थे। सभी कुछ ठीक चल रहा था। किन्तु दैव दुर्विपाक से जब बालक वैद्यनाथ मात्र 12 वर्ष के ही थे कि पिता श्री कृष्ण शास्त्री का देहावसान हो गया। परिवार पर यह भारी विपत्ति आ पड़ी। असमय ही बालक वैद्यनाथ को पारिवारिक भरण पोषण की चिन्ताओं का भार भी उठाना पड़ा। अध्ययन और अर्थोपार्जन दोनों ही उसके लिये अनिवार्य थे। इस अल्पायु में ही संस्कृत भाषा पर उनका सराहनीय अधिकार और शास्त्र वैदुष्य से काशी की पण्डित मण्डली भली प्रकार अवगत हो चुकी थी। अनेक शास्त्रार्थों में लोग उनकी प्रतिभा को देख चुके थे। अतः अपने स्वाभिमान के अनुरूप ही अर्थोपार्जन करते हुए विद्याध्ययन भी निर्बाध चलता रहा। इन दिनों काशी में उन्हें भइया शास्त्री भी कहते थे।

पिता श्री कृष्ण शास्त्री जी ने बालक वैद्यनाथ का उपनयन संस्कार कराकर स्वयं ही उसे "श्री विद्या" की मन्त्र दीक्षा प्रदान की थी। देवी श्री बाला त्रिपुर सुन्दरी की उपासना वैद्यनाथ के जीवन का इसी समय से अंग बन चुकी थी। वे अपनी सभी समस्याओं के समाधान में भगवती त्रिपुरा से ही निर्देश चाहने लगे। महामुनि दुर्वासा विरचित देवी त्रिपुरा के स्तोत्र का पाठ इनकी दैनिक उपासना थी: ऐसे ही एक अवसर पर जबकि ये 16 वर्ष की आयु पूर्ण कर चुके थे, देवी त्रिपुरा के स्तोत्र पाठ में ऐसे तन्मय हो गये कि महामुनि दुर्वासा स्वयं प्रसन्न हो उठे और प्रकट होकर अत्युत्कृष्ट शाम्भव योग दीक्षा प्रदान की जिसकी साधना से इनका अपरोक्ष सत्ता में प्रवेश होने लगा और अनेक दिव्यात्माएँ स्वतः ही मार्ग प्रदर्शन करने लगीं।

यद्यपि आयु अधिक नहीं थी तो भी साधना जनित प्रौढत्व उनमें झलकने लगा था। अपने दैनिक कार्य कलापों में व्यस्त होते हुए भी वें आत्मस्थ और समाहित चित्त रहते थे। महामहोपाध्याय डॉ. गोपीनाथ जी कविराज की प्रेरणा से उन्होंने इसी काल में सरस्वती भवन पुस्तकालय में शोधकार्य करते हुए अनेक ग्रन्थों का सम्पादन भी किया।

विद्या सम्बन्धी संशयों आदि का निवारण करने के लिये इन्होंने भगवान श्री कृष्ण की उपासना की और वे स्वप्न दर्शनादि के द्वारा इनका पथप्रदर्शन करते रहे। इन्होंने सारी भगवत्–गीता का अध्ययन इसी माध्यम से किया और संस्कृत लेखन कला को भी भगवान कृष्ण के द्वारा बताये उपाय से ही किया।

विवाह—

वैद्यनाथ 24 वर्ष के हुए तो इच्छा न होते हुए भी परिवार एवं रिश्तेदारों के अत्यधिक आग्रह के सम्मुख झुकना पड़ा और उन्हें अपने विवाह के लिये स्वीकृति

देनी पड़ी। विवाह की स्वीकृति तो देदी किन्तु उनका अन्तस्व अत्यन्त उद्वेलित था। साधना ने उनकी लौकिक ऐषणाएें समाप्त कर दी थीं। उनके लौकिक संकल्प–सूत्र भीतर ही भीतर समाप्त हो चुके थे। परिस्थिति वश ईश्वरीय इच्छा मानकर ही उन्होंने विवाह के लिये स्वीकृति दी थी। फलतः लौकिक दृष्टि से कहने भर को उनका विवाह संस्कार तो हुआ किन्तु वह नहीं के बराबर ही था। तत्कालीन ब्राह्मणों की परम्परा के अनुसार नव–वधू शीलवती बरात के साथ विदा नहीं की गई और द्विरागमन होने का फिर कभी प्रश्न ही नहीं आया।

दैवी संयोग—

जिस प्रकार भगवान आद्यशंकर भगवतपाद के जीवन का एक प्रसंग उनके सन्यास ग्रहण के हेतु के रूप में प्रसिद्ध है लगभग वैसा ही प्रसंग युवक वैद्यनाथ के जीवन में भी घटित हुआ। विवाह के उपरान्त वे स्वयं ही अपने हृदय में प्रभु से मार्गदर्शन के लिये आकुलतापूर्वक प्रार्थना कर रहे थे। उन्हीं दिनों वे तीर्थाटन हेतु हरिद्वार गये तथा वहां पर्याप्त समय तक रहने के पश्चात् जब-जब भी घर लौटने के लिये मुहूर्त निश्चित कर तद्नुसार चलने को होते थे, रोगग्रस्त हो जाते। इसे इन्होंने अपने घर नहीं लौटने के लिये दैवी आदेश समझा। उन्हीं दिनों एक दिन गंगा स्नान करते हुये तैर कर धारा में दूर तक चले गये। बीच में जाकर वे एक ऐसी भँवर में फँस गये कि जिससे निकलसकना कठिन था। आसन्न मृत्यु को देख, हताश एवं व्याकुल होकर वे हृदय से भगवान से प्रार्थना करने लगे "भगवान मुझे बचालो। मैं सारा जीवन तुम्हें ही अर्पित कर दूंगा।" हृदय में ऐसा निश्चय होते ही चमत्कार हुआ। किसी बड़ी लहर का उन्हें ऐसा धक्का लगा कि वे भँवर से बाहर फेंक दिये गये और शीघ्र ही लहरों ने उन्हें किनारे की ओर बढ़ा दिया। किनारे पर आकर उन्होंने अपने को सँभाला और पूरी घटना पर विचार करने लगे। संकल्प के अनुसार उन्होंने दृढ़ निश्चय कर लिया कि अब शेष जीवन प्रभु को ही समर्पित है। बस, अन्तरात्मा का निर्देश मिल चुका था और 25 वर्ष का युवक वैद्यनाथ घर छोड़कर परिव्राजक बन गया।

परिव्राजक के रूप में—

युवक परिव्राजक के दीक्षा गुरु सर्वप्रथम उनके पिता थे जिन्होंने उपनयन संस्कार के अवसर पर उन्हें "श्री विद्या" की मन्त्र दीक्षा देकर देवी श्री बाला त्रिपुरा सुन्दरी की उपासना से जोड़ दिया था। उसी उपासना से प्रसन्न हो महामुनि दुर्वासा ने उन्हें अत्युत्कृष्ट शाम्भव योग दी दीक्षा दी जिसकी साधना ने उन्हें अपरोक्ष सत्ता में प्रविष्ट कर दिया। अनेक दिव्य और सिद्ध पुरुष उनका मार्ग–दर्शन करने लगे। ऐसे लोकोत्तर क्षेत्र में विचरण करने वाला युवक परिव्राजक भला फिर और किसे गुरु बनाता। उनके भीतर का गुरु जाग चुका था और वह सर्वतन्त्र स्वतन्त्र, स्वयं-सिद्ध परिव्राजक के रूप में दिव्य भूमि पर विचरण करने लगे।

गंगा का पावन तट, तीर्थ, सिद्धक्षेत्र, उत्तराखण्ड और हिमालय के पर्वतीय क्षेत्र उनके विचरण और साधना के स्थल बने। ऋषिकेश से ऊपर का हिमालय का क्षेत्र, हिमाचल प्रदेश, और जम्मू–कश्मीर के अनेक क्षेत्र उनके वर्षों भ्रमण एवं निवास के स्थल रहे।

अमृतवाग्भव आचार्य—

गृह त्याग के उपरान्त युवक परिव्राजक ने अपने पूर्व नाम वैद्यनाथ का परित्याग कर दिया। अब वे अमृतवाग्भवआचार्य के नाम से अभिहित होने लगे। वे अपने प्रत्येक कार्य में आत्मप्रेरणा का निर्देश मानने लगे। यह नाम भी उसी का परिणाम है। भारत भ्रमण के काल में उन्होंने अनेक क्षेत्रों में भ्रमण एवं आवास किया। अनेक विद्वानों, संस्थाओं एवं शोध पीठों ने उनके वैदुष्य का लाभ उठाया। उनके शिष्यों, भक्तों एवं प्रेमियों की संख्या दिनों दिन बढ़ने लगी। वे स्वयं अकेले ही एक बड़ी संख्या के रूप में थे। अब वे कहीं स्वामी जी, कहीं श्री जी महाराज, बाबाजी, और बाबा महाराज के रूप में सम्बोधित किये जाने लगे।

राष्ट्रनिष्ठा—

पूज्य बाबामहाराज के हृदय में राष्ट्र निष्ठा एक अपूर्व रूप में हिलोरें ले रही थी। उनके लिये राष्ट्रनिष्ठा ही अध्यात्म का पर्याय थी। बाबा महाराज का मानना था कि सच्चा राष्ट्रनिष्ठ वही हो सकता है जो आध्यात्मिक है। उनकी इस भावना का पूर्ण निर्देशन उनके द्वारा रचित, श्री राष्ट्रालोक, ग्रन्थ में पाया जा सकता है। राष्ट्रीयता का ऐसा कोई पक्ष नहीं छूटा है जिस पर कि इस ग्रन्थ में विचारपूर्ण विश्लेषण नहीं किया गया हो। राष्ट्र और राष्ट्रनिष्ठा पर लिखा गया यह ग्रन्थ भारतीय वाङ्मय के लिये एक अद्‌भुत देन है। इस ग्रन्थ में 108 कारिकायें हैं, जिस पर कई सौ पृष्ठों में "श्री राष्ट्र संजीवन भाष्य" भी किया गया है। इसके लिये कहा गया हैं कि पाणिनीय व्याकरण में जो स्थान पातंजल महाभाष्य का है तथा वेदान्त में जो स्थान "ब्रह्मसूत्र," शंकर भाष्य का है, वही स्थान राष्ट्रवाद में "श्री संजीवन भाष्य" का है।

"श्री राष्ट्रालोक" की प्रथम और द्वितीय कारिका दृष्टव्य हैं :—

चतुर्णां पुरुषार्थानां हेतवे वृषकेतवे।
पितृपुण्यभुवे तस्मै स्वराष्ट्राय नमो नमः ॥१॥

धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष नामक चारों पुरुषार्थों के साधन, पिता, पितामह आदि अपने पूर्वजों के तथा अपने पुण्य के उत्पत्ति स्थान, अत्यन्त प्रसिद्ध वृषकेतु रूप स्वराष्ट्र को बारम्बार प्रणाम है।

अनुबन्ध चतुष्टय के निरुपण के लिये लिखी गई दूसरी कारिका देखिये —

राष्ट्रदृष्टिं नमस्यामो राष्ट्रमंगलकारिणीम् ।
यया बिना न पश्यन्ति राष्ट्रं स्वनिकटस्थितम् ॥२॥

[राष्ट्र का मंगल करने वाली राष्ट्र दृष्टि को हम नमस्कार करते हैं, जिस राष्ट्र दृष्टि के बिना अपने पास ही रहने वाले भी राष्ट्र को नहीं देखते हैं ।२।]

राष्ट्र की परिभाषा करते हुये वे तीसरी कारिका में लिखते हैं :—

समानसंस्कृतिमतां यावती पितृपुण्यभूः ।
तावतीं भुवमावृत्य राष्ट्रमेकं निगद्यते ॥३॥

[समान संस्कृति वाले लोगों की जितनी पितृपुण्य भूमि होती है, उतनी भूमि को घेर कर एक "राष्ट्र" कहा जाता है ।३।]

इसी प्रकार शान्ति के बारे में कहते हैं :—

ययाशान्त्या पराधीनं राष्ट्रंभवति सा न हि ।
शांन्तिः किन्तु नितान्तंसा केवलं क्लीवता मता ॥८५॥

[जिस शान्ति से राष्ट्र पराधीन होता है, वह शान्ति नहीं वह तो केवल कायरता है ॥८५॥

राष्ट्रवाद के अनेक विषयों का विवेचन करते हुये ग्रन्थ के अन्त में ग्रन्थ के रहस्य को समझने के लिये वे परामर्श देते हैं :—

ग्रन्थस्याऽस्या रहस्यं ये ज्ञातुं वांछन्ति भावुका : ॥
पठन्त्वात्मविलासं ते काम जितसुधामदम् ॥१०६॥

[जो भावुक इस ग्रन्थ के रहस्य को जानना चाहते हैं वे अमृत के अभिमान को जीतने वाले, "श्री आत्मविलास" ग्रन्थ को यथेष्ट पढ ।१०६।]

पाठक यह स्वतः अनुमान कर सकते हैं कि "श्री राष्ट्रालोक" ग्रन्थ की क्या गरिमा है । 'आत्मविलास" ग्रन्थ जो कि पूज्य बाबा महाराज द्वारा रचित वेदान्त का सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है, उसके बारे में वे कहते हैं कि जो यथेष्ट रूप से "श्री आत्म विलास" ग्रन्थ को पढेगा वही व्यक्ति "श्री राष्ट्रालोक" ग्रन्थ के रहस्य को समझ सकेगा ।

पूज्य बाबा महाराज की सभी कृतियाँ लोकोत्तर भाव भूमि का निर्माण करती है । उनकी राष्ट्रनिष्ठा के सन्दर्भ में अभी एक ही ग्रन्थ की चर्चा संक्षिप्त रूप से की है जब कि उनकी समस्त रचनायें भारतीय संस्कृति एवं भारतीय वाङमय के लिये गौरव का कारण बनती हैं ।

बाबामहाराज और महात्मा गान्धी :—

बाबा महाराज ने भारतीय स्वाधीनता संग्राम में अपनी ओर से भरपूर योगदान किया। वे ऐसे निस्पृह और अकाम थे कि उन्होंने कभी अपना नाम ही प्रकट नहीं होने दिया। प्रसंगवश ही यदाकदा उनके श्री मुख से कुछ सुनने को मिला जिससे प्रकट होता है कि वे महात्मा गान्धी के साथ उनके आश्रम में लम्बे समय तक रहे। राष्ट्रीय नेताओं से उनके निकट के संपर्क थे। 1948 में राष्ट्रपिता की हत्या के अवसर पर उन्होंने अपने जो शोकोद्गार प्रकट किये उन्हीं से उनकी आत्मीयता का अनुमान किया जा सकता है :—

श्री कस्तुरबा की पहनी साड़ी का पल्ला हाथ में पकड़कर उसका सूतपोत जब में देख रहा था और जब श्री कस्तुरबा ने गुजराती मिश्रित हिन्दी में कहा — "सारी रीते कातना अभी आवड़ता नाही, यह सूत्र घणू मोटू छे हो।" वह घटना अभी भी स्मृतिपथ से दूर नहीं हुई है। मैंने अपने प्रिय से प्रिय के वियोग में भी कभी कुछ नही लिखा था, किन्तु श्री गांधीजी के वियोग दुःख ने सारे वैराग्य को एक ओर रखवाकर हठात् यह कुछ पंक्तियाँ उगलवा ही लीं। (श्री स्वाध्याय)

इसी प्रकार जब स्वनाम धन्य डा. श्यामाप्रसाद मुकर्जी का कश्मीर की बलिवेदी पर बलिदान हुआ तब भी पूज्य बाबा महाराज शोक से विह्वल हो उठे थे। साथ ही उन्होंने श्री स्वाध्याय पत्र के माध्यय से उनके मृत्यु के कारणों की जोरदार माँग की थी।

पूज्य बाबा महाराज का सम्पूर्ण कार्य-कलाप आजीवन आध्यात्म आध्यात्म एवं राष्ट्रनिष्ठा से ओत-प्रोत रहा।

उनके विचार में अधिक से अधिक मानवों को परमार्थ के मार्ग पर चलने के अवसरों को तभी सुलभ बनाया जा सकता है जब राष्ट्र में सत् शासन को चलाया जाये। सत् शासन को चलाने के लिये राजनीति की सत् परम्परा को स्थापित किया जाना अत्यन्त आवश्यक है सत् नीति को तभी अपनाया जा सकता है जब राजनीति के सारे ढांचे पर ऐसे सज्जनों का अधिकार हो तो सच्चरित्र हों, धन के लोभी न हो स्वार्थी एवं नृशंस न हों, सर्वथा राष्ट्रहित को ही चाहते हों। और अर्थनीति वैसी हो जिसका दिग्दर्शन उन्होंने "श्री राष्ट्रालोक" में कराया है।

पूर्व जन्मों की स्मृति—

परिव्राजक के रूप में विचरण करते हुए जिन दिनों वे बारामूला में निवास कर रहे थे, उनकी भेंट एक परमहंस वृत्ति वाले सिद्ध पुरुष से हुई, जिन्हें लोग 'चखमा बाबा' कहते थे। चखमा बाबा ने बाबा महाराज को बताया था कि वे पूर्व

जन्म में विद्याधर नामक देवयोनि में थे और एक शाप के कारण कई जन्मों से मानव योनि में भटक रहे हैं। बाबा महाराज इसे मान नहीं रहे थे। अतएव चखमा बाबा ने उन्हें पूर्व जन्म की स्मृति के लिये एक यौगिक क्रिया बताई। इस क्रिया के अभ्यास से कुछ ही दिनों में बाबा महाराज की पूर्व जन्म की स्मृति जाग्रत हो उठी। तब उन्हें भी विश्वास हुआ कि वास्तव में वे विद्याधर योनि में थे। पिछले कई मानव जन्मों का स्मरण आ गया। तब उन्होंने अपने जीवन की अनेक विगत घटनाओं का स्मरण किया जिससे बचपन की घटित अनेक घटनाओं का रहस्य स्पष्ट हुआ। इस आधार पर यह इनका चतुर्थ जन्म चल रहा था। अभी उन्हें एक देह और धारण करना था। प्रथम जन्म राजस्थान के एक बड़े राजवंश में हुआ। दूसरा जन्म गुजरात में एक ब्राह्मण कुल में, तीसरा पंजाब प्रदेश के झेलम जिले के अन्तर्गत एक ब्राह्मण कुल में तथा चतुर्थ जन्म में अभी विद्यमान थे। पाँचवा जन्म उन्हें उत्तर प्रदेश के जिला हरदोई में ब्राह्मण कुल में लेना था। किन्तु उनका मानना था कि जगदम्बा ने उनकी यह प्रार्थना स्वीकार कर ली है कि अब अगला जन्म धारण नहीं करना पड़े और सभी भोग इसी जन्म में पूरे हो जाय।

हुआ यों कि पूज्यपाद बाबा महाराज ने वि. सं. 1986 में मात्र 26 वर्ष की अवस्था में श्री भगवतीस्तव की मन्दाक्रान्ता छन्द में रचना की। चखमा बाबा के अनुसार लगभग 65 वर्ष की अवस्था में यह शरीर छोड़कर दूसरा शरीर धारण करना था। अतः उससे मुक्ति पाने की प्रार्थनास्वरूप ही उन्होंने उक्त अनुपम स्तोत्र रचना की जिसका मंगलाचरण श्लोक इस सम्बन्ध में यहां अवलोकनीय है—

"भ्रामं भ्रामं विविधि जननी गर्भ गेहान्तरेषु
श्रान्तः श्रान्तस्तव पदयुगं प्राप्य विश्रान्ति हेतो :
शान्तस्वान्तश्चरण पतितः प्रार्थये त्वां नितान्तं
मातर्मात :।" परमनुभवं जन्मनो देहिमह्यम्।

हे माता। तरह तरह की योनियों में उन विविध प्रकार की माताओं के गर्भ रूपी घरों में घूम-घूम कर बहुत थका हुआ मैं, परम विश्रान्ति के लिये और परम विश्रान्ति के मूल कारण भूत आपके चरण कमलों में पड़कर अर्थात् उनका आश्रय ग्रहण कर, अत्यन्त कातर वाणी से, मैं यह प्रार्थना करता हूँ कि अब मुझे जन्मान्तर ग्रहण करने का अर्थात् दुबारा जन्म लेने का अनुभव प्राप्त न हो।

बाबामहाराज ने एक बार उक्त रचना के संबन्ध में चर्चा करते हुए कहा था कि उक्त स्तव के 71 वें श्लोक के आगे भी कुछ और श्लोक लिखने का उनका विचार था। किन्तु जिस दिन 71 वाँ श्लोक समाप्त हुआ उस दिन एक घटना घटी।

उन दिनों एक भक्त उनसे गीता पढ़ने आया करते थे। सदैव की दिन चर्या के अनुसार बाबामहाराज वहाँ भी 9-9-1 2 बजे रात्रि विश्राम हेतु सभी भक्त जनों से विदा ले लेते थे। उस दिन भी जब वह भक्त रात्रि के लगभग 9-30 बजे चला गया तब सोने के उपक्रम के पूर्व भगवत स्मरण करते उन्हे आठ घण्टे की समाधि लग गई जब समाधि भंग हुई तब उन्हे लगा कि अभी तो भक्त गया ही है चलो शयन पूर्व की प्रक्रिया से निवृत होकर सोया जाय। इस हेतु जब वह बाहर तालाब के निकट गये तो देखते हैं कि वहाँ काफी लोगों की चहल-पहल है। उन्होंने आश्चर्य भाव से पूछा कि आज इतनी रात गये लोग क्या करने आये हैं तो लोगों ने भी आश्चर्य के साथ कहा--महाराज रात्रि तो बीत चुकी अब तो प्रातःकाल के लगभग पाँच बजे का समय है। अतः नित्य नियमानुसार हम लोग यहां आये हैं। यह सुनकर बाबा को और भी आश्चर्य हुआ। चूंकि उन्हें इस समाधि के मध्य ऐसा निश्चित संकेत मिल गया था कि माँ भगवती ने उनकी उक्त प्रार्थना स्वीकार कर ली है। अतः उन्होंने आगे कोई श्लोक न जोड़कर वहीं इस महान स्तोत्र का समापन कर दिया।

विविध आयाम : श्री स्वाध्याय सदन :—

बाबा महाराज ने सांस्कृतिक पुनरुद्धार के हेतु विविध संस्थानों एवं शोध पीठों की स्थापना की। सर्वप्रथम उन्होंने संवत् 1998 में (श्री स्वाध्याय सदन) की स्थापना सोलन (हिमाचल प्रदेश) में की। श्री स्वाध्याय सदन अपनी अनेक गतिविधियों के अतिरिक्त एक त्रैमासिक पत्र "श्री स्वाध्याय का प्रकाशन आरम्भ किया। इस पत्र के संस्थापक तथा प्रधानाध्यक्ष पूज्य बाबा-महाराज सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र महामहिम् आचार्य अमृतवाग्वजी महाराज ही थे। संरक्षक और सहायकों में अनेक राजामहाराजा, उच्चाधिकारियों और विद्वान पुरुष थे। व्यवस्थापक थे श्री पण्डित हरदेव शर्मा त्रिवेदी ज्योतिषाचार्य इस पत्र को देश के सांस्कृतिक पत्रों में शीर्षस्थ स्थान प्राप्त था। यह निरन्तर 16 वर्ष प्रकाशित होता रहा। सदन की अन्य प्रवृत्तियों में वाचनालय-शिक्षणालय आदि भी थे। सदन के माध्यम से पूज्य बाबा महाराज के कई ग्रन्थों का प्रकाशन भी हुआ।

"श्री स्वाध्याय" ने पराधीनता काल में देश की स्वाधीनता के लिये अपना स्वर ऊँचा किया। स्वाधीनता के उपरान्त राष्ट्रभाषा हिन्दी, गौरक्षा, संस्कृत का भाषा का प्रचार-प्रसार, सांस्कृतिक अभ्युत्थान आदि विषयों पर अपनी ओर से सशक्त प्रतिनिधित्व किया।

"श्री स्वाध्याय सदन" सोलन के अतिरिक्त निम्नलिखित संस्थायें भी पूज्य बाबा महाराज द्वारा स्थापित हुई जिनसे कई प्रकाशन भी हुए और अन्य सांस्कृतिक पुनरुद्धार के कार्य क्रम सम्पन्न होते आ रहे हैं।

1–श्री पीठम् सैद्धदर्शनशोध संस्थानम् (कश्मीर)

2–श्री स्वाध्याय सदन, भरतपुर (राजस्थान)

3–श्रीमदमृतवाग्भवाचार्य सांस्कृतिक शिक्षा एवं शोध संस्थान, जयपुर (राज0)

4–विद्वद् बरकल श्री राधाकृष्ण धार्मिक संस्थान नई दिल्ली।

उपरोक्त संस्थानों के अतिरिक्त पूज्य बाबा महाराज के शिष्यों भक्तों एवं प्रेमियों ने उनके नाम से अनेक धर्म स्थानों का निर्माण कराया। जयपुर (राजस्थान) स्थित जनता कॉलोनीमें जहाँ वे प्राय: आकर बिराजते थे, एक 'अमृतेश्वर महादेव मंदिर एवं एक मार्ग का नाम अमृत-पथ है।

किसी भी युग पुरुष महामानव का धराधाम पर आने का एक निश्चित लक्ष्य हुआ करता है। ऐसे महापुरुष के चतुर्दिक जो जन समुदाय का परिवेश बनता है, वह भी उनकी उन्हीं शक्तियों का परिवेश ही होता है जो उनके कार्य-कलाप में सहायक भूमिका निभाते हैं।

पूज्य बाबा महारज का भी एक ऐसा ही मण्डल रहा है जिसने उनके जीवन काल में उनका सामीप्य लाभ लिया है और आज उनकी स्मृति और आदेश-निर्देशों के प्रचार-प्रसार की भूमिका निभा रहा है। ऐसे ही स्वनामधन्य लोगों में एक नाम है स्व0 श्री पं. गोविन्द मिश्र (भरतपुर) का जो बाबा के अतिअभिन्न थे। पूज्य बाबा महाराज के शरीर छोड़ने के कुछ ही समय पूर्व ही वे पंचत्व को प्राप्त हो गये। बाबा महाराज उनसे जुड़े हुए मण्डल के अतिरिक्त भी योग, तन्त्र, एवं शक्ति साधकों के लिए अविस्मरणीय है। पूज्य बाबा महाराज के अनेक ग्रन्थों में उनके लिये एक श्लोक, श्री मिश्र जी की स्मृति में यहाँ उल्लेखनीय है।

अमृतनिभृतशास्त्रं साधु मुद्रापयित्वा
प्रथयति विबुधानां लब्धुकामः प्रसादम्।
अमलमतिप्रसादीलालपुत्रोऽत्रिगोत्री
भरतपुरनिवासी मिश्रगोविन्दशर्मा॥

ऐसे ही एक दूसरे महाभाग है, जम्मू के सुप्रसिद्ध विद्वान श्री पं वलिजिनाथ शास्त्री, जिन्होंने पूज्य बाबा महाराज के सांस्कृतिक पुनरुद्धार के अभियान में अनन्य सहयोग प्रदान किया है। बाबा महाराज की अमर कृतियों में स्व. श्री मिश्र के लिये जो भाव प्रकट किया गया है, उससे अधिक क्या कहा जा सकता है। धन्य है वे जिन्हें बाबा का कृपा लाभ प्राप्त हुआ।

अभिनवशंकर :—

पूज्य बाबा महाराज के ग्रन्थ रत्नों पर जब दृष्टिपात करते हैं तो लगता है जैसे भगवान आद्य शंकराचार्य ही उनकी वाणी में बोल रहे हों। विषय-वस्तु, भाषा, छन्द-रचना की अद्भुत सामर्थ्य, काव्यमाधुर्य, और विषय विश्लेषण सब कुछ उनका अलौकिक है। उनका सम्पूर्ण साहित्य संस्कृत पदों में है। जहां उन्होंने व्याख्या की है वह भी संस्कृत में हैं। उनके रचित समस्त संस्कृत साहित्य की प्रौढ़ता लालित्य एवं प्रांजल्य को देखकर आश्चर्यचकित होना पड़ता है।

भगवान आद्यशंकर के समान ही पूज्य बाबा महाराज भी अद्वैत के उपासक, शक्ति के आराधक और राष्ट्रीय अखण्डता एवं संस्कृति के पुनरुद्धारक थे। अद्वैत रहस्य को समझने के लिये बाबामहाराज द्वारा रचित "आत्म विलास" ही अलम् है। "आत्मविलास" में जिस प्रकार विषय को स्पष्ट किया गया है उसे देखकर कहना पड़ता है कि यह गागर में सागर है।

"आत्मविलास" के परिचय के लिये स्व0 पं0 श्री गोविन्दमिश्र की एक कविता यहां प्रस्तुत है :—

अन्य अनेकन ग्रन्थ पढौ
तिनसो नहि एकहु ज्ञान की आस है,
वारिद कोटिन बूंद परौ बिन
मेह न स्वाति के चातक प्यास है।
पन्थ असंख्यन हैजगमांहि
फंसे तिनमें रहे दास को दास है,
आतम-ज्ञान प्रकाशन हेतु
अहै जग एकहि आत्मविलास है ॥१॥
अन्य अहै न कछू जग में,
जो कछु दीखे सो आत्मविलास है।
नित्य नवीन औ है रमणीय
औ सच्चिदानन्द को कन्द जो खास है
आप ही आप प्रवीन नवीन
विलास सो नित्य करे उल्लास है,
मंगल हू को मंगल देत है
अनुभूति ही जासूं रहस्य विकास है ॥२॥

अहै सब उपनिषदन को सार ।
शास्त्र पुराण सकल निगमागम सबहि तन्त्र को तार ।
कर स्वाध्याय अहर्निश याको पावे ब्रह्म विचार,
जग प्रपंच सब जान परंगो मिटि है बुद्धि विकार ।
"अमृतवाग्भव' अमृत दीन्हो पीओ पीवनहार,
भवसागर की चपल तरंङ्गन यही लगावे पार ॥3

पूज्य बाबामहाराज ने अधिकांश लघुकाय ग्रन्थों की ही रचना की है—उनका कथन था कि आज का व्यक्ति बड़े शास्त्रीय ग्रन्थों को समझने और धारण कर सकने की पात्रता नहीं रखता । इसी कारण उन्होंने जो लघु आकृतियों में अपनी अमर रचनायें दी है उनमें विभिन्न विषयों पर उनमें विशाल ग्रन्थों की क्षमतायें एवं शक्तियां भरी पड़ी हैं । वे लोकोत्तर रहस्य को स्पष्ट कराने की दिशा में निर्देशन का काम करती है ।

"श्रीमदअमृतग्रन्थमाला" के कुछ पुष्पों का यहाँ परिचय दिया जा रहा है—

प्रथम प्रसून है—"श्री महानुभवशक्तिस्तव" पंडित प्रवर श्री गोविन्द मिश्र ने इसका प्रकाशन सं0 2010 वि0 में किया है । स्वानुभूतिसुलभशक्तित्व का वर्णन स्तव का मुख्य विषय है । इस पुनीत और लघुकाय किन्तु प्रामाणिक ग्रन्थ में, गुरुतत्व, प्रकाश और विमर्शप्रभुति विषयों का वर्णन आचार्य वर्य ने जिस शैली में सरलता और सरसता के साथ किया है वह अनिर्वचनीय है । परमेशानी पराम्बा के शक्ति पंचक का दिग्दर्शन कराकर महामहिम मनीषीमहाभाग ने आराधक जगत को उपकृत करके "श्री चक्र" के रहस्य का उद्घाटन भी बड़ी विचित्रता से किया है ।

स्रोतम् द्वितीय पुष्य है । "श्री परशुराम"

इस ग्रन्थ में भार्गव कुल कुमुद कलाधर द्विजवर भगवान परशुराम के प्रबल प्रभाव का स्तवन सुराज संस्थापन । सुधी समाज ने इस संकल्प का सतत् वन्दन किया है । ग्रन्थ गम्भीर और गरिमामय है ।

तृतीय पुष्प है—

"श्री विंशतिका शास्त्रम्" यह ग्रन्थ प्रत्यभिज्ञादर्शन की "मास्टर की" है । ग्रन्थ तीन टीकाओं से अलंकृत है । दो टीकाऐं संस्कृत में और एक हिन्दी में । ग्रन्थ का प्राक्कथन लिखकर डा0 सम्पूर्णानन्द (राज्यपाल राजस्थान) ने ग्रन्थ गौरव की मुक्त कण्ठ से श्लाधा की है । जयपुर के प्रख्यात पंडित प्रवर आशु कवि श्री हरिशास्त्री 'दाधीच' की ग्रन्थ पर प्रस्तावना द्रष्टव्य है । इस ग्रन्थ में केवल बीस

कारिकाओं में शिव–शक्तितत्त्व और प्रत्यभिज्ञा सिद्धांत लिखकर आचार्य वर्य ने विन्दु में सिन्धु की उक्ति को चरितार्थ किया है। ग्रन्थ आकार में लघिष्ठ होने पर भी विषय विवेचन में गरिष्ठ है।

चतुर्थ पुष्प

"श्री सप्तपदीहृदयम्" संस्कृत, हिन्दी और इंग्लिश में अनुदित यह ग्रन्थ नव-दम्पत्तियों को प्रशस्तपथ का प्रदर्शक सिद्ध हुआ है। वैदिक सप्तपदीका यह भाष्य अपने आप में पूर्ण और अनुपम है।

पंचम पुष्प

"श्री संजीवनी दर्शनम्" आचार्य श्री को भगवान् मृत्युंजय पर परम शिव का दर्शन और मृत्युंजय मंत्र की प्राप्ति ग्रन्थ का मुख्य विषय है। त्रिविध ताप संतप्त जनसाधारण के कल्याणार्थ आचार्य श्री ने इस ग्रन्थ में अत्यन्त गोपनीय विषय का प्रकाशन करने की कृपा की है। हम आचार्य श्री के चिरऋणी हैं।

"संक्रांति पंचदशी"

षष्ठम पुष्प

ग्रन्थ का अनुवाद राष्ट्र भाषा हिन्दी में गद्य और पद्य में है। संक्रांति द्वारा ही राष्ट्र की सर्वतोमुखी सम्मुन्नति संभव है—यह संदेश राष्ट्र के नाम महामहिम् आचार्य ने केवल 15 पद्यों में अभिव्यक्त किया है। भगवती उमा अन्याय का उन्मूलन और न्याय का संस्थापन करके ही संक्रांति के रूप में क्रीड़ा करती है। संक्रांति सत्पुरुषों की रक्षा का कवच और दूर्दान्त जनों के दमन का अजेय अस्त्र है। संक्रांति स्वरुपा मां दुर्गा की शरणागति और समाश्रय ही ग्रन्थ का प्रतिपाद्यतत्व है। सप्तम पुष्प है—'श्री सिद्धमहामंत्रमयी परशिव प्रार्थना" ग्रन्थ का प्रकाशन हिन्दी और अंग्रेजी अनुवाद के साथ हुआ है। ग्रन्थ का वर्णन विषय उसके नाम से ही स्पष्ट है।

"मन्दाक्रांता स्त्रोत्रंम्" यह इस ग्रन्थमाला का अष्टम् पुष्प है। ग्रन्थ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और उपादेय है। ग्रन्थ में 73 मन्दाक्रांता छन्द है। भगवती बाला त्रिपुर सुन्दरी के स्वभाव, सौन्दर्य और औदार्य का वर्णन और उनके सिद्ध मंत्र का तीनों कूटों का उपदेश मां के भक्तों को प्रदान करना ग्रन्थ रचना का मूल है। बीजों के जप का प्रकार और फल"— अकारण करुण आचार्य–चरण ने बतलाकर शाक्त जगत को अनुग्रहित कर दिया है। इस प्रकार जनसामान्य को अपने वैदुष्य, योगशक्ति, और अनुभव से उपकृत करने हेतु आचार्य श्री ने बहुसंख्यक ग्रन्थों की रचना की है।

पूज्य बाबा महाराज ने ग्रन्थ रचना के अतिरिक्त अनेक विषयों पर अलग से भी लेख एवं पद्य रचनायें संस्कृत में समय-समय पर लिखीं जो सामयिक पत्रों में

प्रकाशित हुई। 'श्री स्वाध्याय' के माध्यम से उन्होंने जन शिक्षण के लिये एवं सामयिक राजनीति पर अपने विचार प्रस्तुत किये। शिष्यों के अधिक आग्रह पर उन्होंने अपने जीवन से संबंधित कुछ प्रसंगों पर भी लिखना प्रारम्भ किया था जिनसे सामान्य साधकों का मार्ग दर्शन हो सकना संभव था।

"वस्तुस्थिति क्या है" ? शीर्षक के अन्तर्गत वे धारावाहिक रूप से आध्यात्मिक विचारों का प्रतिपादन करते थे।

संस्कृत के अतिरिक्त वे हिन्दी में भी कविताएँ यदाकदा लिखते थे। वह ऐसा युग था जब हिन्दी कविता अपने स्वरूप निर्धारण में लगी हुई थी। बाबा महाराज द्वारा लिखी परिष्कृत हिन्दी की कविता दृष्टव्य है।

मानव का कर्त्तव्य

भ्रान्ति छोड़कर शान्त स्वान्त में,
कांति–कांत का चिन्तन कर।
नहिं बन दानव तू है मानव,
मति कौशल से भव भयतर॥
शुद्ध बुद्धि से युद्ध क्रुद्ध हो,
दस्यु दमन के लिये करो।
बद्ध भाव का नाश सिद्ध कर,
मुक्त भाव को प्राप्त करो॥
दण्डयोग्यहै आततायीजन,
शास्त्रों में यह ऋषि कहते॥
इस पर चलते नहिं जो मानव,
बल रखकर भी वे गिरते॥
रक्षणीय जो शिष्ट लोक है,
उनकी रक्षा नहि करते॥
नर होकर भी मोहग्रस्त जो,
नरक पुरी में वे फिरते॥

सिद्ध दर्शन प्रसंग—

पूज्य बाबा महाराज के जीवन में अनेक सिद्ध–पुरुषों से मिलने, मार्ग-दर्शन, वार्तालाप अथवा शास्त्र चर्चा के प्रसंग आये हैं। कभी-कभी वार्ता प्रसंग में उन्होंने ऐसी घटनायें सुनायी हैं। उनमें से कुछ प्रसंग उन्हीं के शब्दों में दिये जा रहे हैं:—

[1]

कश्मीर में (प्रद्युम्नपीठ) में "श्री सारिका पर्वतमाला के अंक में" हरी-हरी घास पर बैठा हुआ लघुस्तव की 18वीं सारिका का पाठ आनन्दमग्न होकर कर

रहा था। अन्य उपस्थित लोगों में से एक महानुभाव इस प्रक्रिया को बड़े ध्यान से देख सुन रहे थे। उन महानुभाव के श्वेतश्याम दाढ़ी थी। शरीर पर भस्म लगी हुई थी। शरीर न अधिक स्थूल था न कृश। वर्ण भी न अधिक गोरा था और न सांवला। मेरे सस्वर पाठ को सुनकर वे बहुत ही प्रसन्न हुए। पाठ समाप्त कर जब मैं जाने को उद्यत हुआ तो उन्होंने बिना बोले ही हाथ के संकेत से जाने से रोका। मेरे पास आकर मेरा नाम और जन्म स्थान आदि का परिचय पूछने लगे। उनके इस प्रकार पूछने पर मैंने रूखे स्वर से कहा—ब्रह्मण श्रेष्ठ" ! व्यर्थ के प्रश्नों से क्या लाभ ? आप मेरे से क्या चाहते हैं, वह सीधा-सीधा बताये ? मेरे रुखे वाक्य सुनकर उन्होंने कहा–तुम्हारा स्वर व पाठक्रम तो इतना मनोहर व मधुर है फिर बचन इतने रूखे व कटु क्यो हैं ? इस पर मैंने हंसी उड़ाते हुए कहा कि टेढ़े आदमी को सीधी चीज भी टेड़ी ही लगती है। उन्होंने कहा–गुस्सा छोड़ो और यह बताओ कि 'पंचस्तवी" का पाठ क्या गुरुमुख से सुना है ? क्या इस पद्य की व्याख्या मालूम है ? मैने उन्हें व्याख्या बताई तो वह परम प्रसन्न हुए। कहने लगे–यद्यपि कश्मीर प्रदेश में आज इस प्रकार की गूढ़ एवं पाण्ड़ित्यपूर्ण और मन को संतोष प्रदान करने वाली व्याख्या करने वाला कोई दूसरा नहीं दिखता फिर भी इसकी जो वास्तविक गूढ़ार्थ व्याख्या है, वह और है। मैंने (पंचस्तवी) गुरु मुख से पढ़ी है। इस पर मैंने कहा तो फिर वह वास्तविक गूढ़ार्थ आप ही बतलायें। इस पर उन्होंने कहा कि अभी तो दिन ढल रहा है। इसे कहने में समय लगेगा। आप जानना चाहते है तो मेरे निवास स्थान पर आजायें मैं "माली–कदल" मुहल्ले में रहता हूँ। वहाँ आकर "शिवजी" के नाम से आवाज दे लेना। इस पर मैंने उनके साथ जाकर उन का निवास स्थान भली प्रकार देख लिया और अपने आवास–स्थल पर आ गया जो कि 'हव्वा कदल" में था।

दूसरे दिन मैं श्री शिवजी महाराज के निवास की ओर चला और यथा स्थान पहुँच कर शिवजी, शिवजी कह कर आवाज लगायी तो दूसरी मंजिल पर बने मकान के खिड़की से उन्होंने हाथ के संकेत से ऊपर आने को कहा। मैं ऊपर गया तो देखा कि कमरे में व्यवस्थित रूप से गलीचे और गद्दे के ऊपर तकिये आदि लगे हुए थे। अगरबत्ती जल रही थी। पुष्पमाला भी रखी थी। एक ओर उनका व दूसरी ओर मेरा आसन लगा हुआ था। मुझे बड़े स्नेह और आदर–भाव से उन्होंने बैठाया। श्री शिवजी महाराज का शरीर अत्यन्त तेजस्वी लग रहा था। वे 60 अथवा 70 वर्ष की आयु के लग रहे थे। उन्होंने मेरा स्वागत करते हुए सूखे मेवे मिला हुआ दूध मुझे पिलाया। उनके मधुर व्यवहार से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मैंने उनसे निवेदन किया कि कृपया उस श्लोक का गूढ़ार्थ और रहस्य समझाएँ। इस पर उन्होंने निश्चल एवं शांतभाव से अद्भुत कृपापूर्ण दृष्टि से मेरी आँखों में आखें डालकर एक टक देखा। इस प्रकार कुछ समय तक देखते रहने के बाद पूछा

कि गूढ़ रहस्य समझ में आया कि नहीं ? मैंने कहा—यह अद्जुत रहस्य मेरी समझ में आ गया है। इस कृपा के लिये मैंने सच्चे मन से उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट की। कुछ देर बाद मैने उनसे कहा कि इसका एक रहस्य ठीक से समझ में नहीं आया है। उसे भी प्रकट करने की कृपा करें। मेरी बात सुनकर वे कुछ देर के लिए मौन हो गये फिर मधुर वाणी में कहा कि अभी उस रहस्य को प्रकट करने का समय नहीं आया है। यदि अभी वह रहस्य तुम्हें प्रकट कर दिया तो तुम्हारे इस पंच भौतिक शरीर का तुरन्त पात हो जायेगा किन्तु अभी इस शरीर से बहुत से सत्कार्य होने शेष हैं।

मैंने कहा यदि मेरा शरीर छूटता है तो छूट जाये। मेरे पीछे कौन परिवार है जिसकी मुझे चिन्ता हो। उन्होंने कहा—नही, एक परिवार न सही यह भू-मण्डलीय परिवार भी तो इस शरीर से कृतार्थ होना है। अतः अभी रहस्य जानने का हठ नहीं करो। इस पर मैंने कुछ रूखे स्वर में कहा—नहीं बताना चाहते हो तो मत बताओं। जब भगवती की इच्छा होगी और किसी के द्वारा बतायेगी। अभी भी तो आपने ही बुलाकर बताया है। आप ही मेरे पाठ के आकर्षण से बंधे चले आये मां की कृपा से ! आगे कोई और आ जायेगा ! यह सुनकर उन्होंने बहुत ही मधुर वाणी में कहा—मैंने जो कुछ दिया है वह प्राण समझ कर दिया है। कोई एहसान करके नहीं। मैं बहुत ही संतुष्ट हूँ कि तुमने उसे सही अधिकारी के रूप में ग्रहण किया है। अब शेष रहस्य जानने का हठ करना उचित नहीं।

इस प्रकार कुछ समय के मौन के पश्चात् उन्होंने विषय परिवर्तन कर दिया। कुछ देर और वार्तालाप के बाद मैं अपने आवास पर आ गया। उस दिन प्रदोष का व्रत था अतः आवास पर आकर व्रत का पारण किया।

कुछ समय के उपरान्त जब कश्मीर से लौटने को हुआ तो सोचा एक बार फिर शिवजी महाराज जैसे महात्मा पुरुष के दर्शन कर लिए जाएँ। फिर न जाने कब आना हो। ऐसा सोच कर मैं उस मौहल्ले में जाकर उसी मकान के नीचे पहुंच कर—"शिवजी" शिवजी कहकर आवाज लगाने लगा। बड़ी देर तक पुकारने के बाद भी कोई उत्तर नहीं मिला। मेरी आवाज सुनकर आस-पास के व्यक्ति चकित होकर पूछने लगे कि मैं किसे पूछ रहा हूं। मैंने उनसे कहा कि इस मकान में शिवजी नाम के व्यक्ति रहते हैं। उन्हें ही पूछ रहा हूं। इस पर वे सभी कहने लगे महाराज आप कहीं भूल गये लगते हैं। यह मकान तो एक ऐसे व्यक्ति का है जो कई वर्षो विलायत में अध्ययन करने के लिए गया हुआ है। उसमें ताला लगा हुआ है, और नीचे वाला हिस्सा किराये पर दिया हुआ है। इस पर मैंने उस मकान में ऊपर-नीचे जाकर देखा तो पाया कि मकान तो वही है। तब मैंने संपूर्ण घटना लोगों को सुनाई।

सुनकर सभी लोग मेरे भाग्य की सराहना करने लगे और बोले कि इस "सारिका पर्वत" के प्रांगण में एक सिद्ध महापुरुष घूमते हुए कभी- कभी किसी भाग्यशाली पुरुष को अपनी कृपा से कृतार्थ कर देते हैं।

(2)

सिद्ध महामंत्रस्वरूपिणी श्री परिशिव प्रार्थना की उपलब्धि के समय भी तो मैं उसे मात्र एक साधारण प्रार्थना समझकर उसमें एक व्याकरण दोष समझकर उसका संशोधन करना चाहता था ऐसे ही चिन्तन में एकान्त में अपने आसन पर बैठा हुआ था। अकस्मात एक दिव्य शरीरधारी घुटनों तक पुराना कपड़ा-जिसका एक छोर नीचे तक लटक रहा था—पहने हुए। रोओं के गुच्छों से भरे हुए छिद्र वाले बड़े-बड़े कान ऐसे वे महापुरुष प्रकट हुये। उनके संपूर्ण शरीर में घुंघराले बाल भरे थे। आंखों की पुतलियां बिजली की चमक से भी अधिक चमकीली थी। ऐसे वे—अज्ञात कोई महापुरुष मेरे सम्मुख प्रकट होकर अपनी तर्जनी उँगली को ऊँची उठाकर घुमाते हुये और बड़ी गर्जना के साथ मुझसे कहने लगे—"यह श्लोक अशुद्ध नहीं है। उसमें कोई इधर-उधर परिवर्तन नहीं करना। तुम तो बुद्धिमान हो ऐसा समास करने पर (बद्धादरकरं) कौन सी अशुद्धि की आशंका तुमको हो रही है। इस तरह कहकर दयार्द्र दृष्टि से एक बार मुझे फिर देखा और बिजली की गति से वह अदृश्य हो गये।

तब से इस महामन्त्र का जप करके लोग अनेक प्रकार के आध्यात्मिक एवं सांसारिक लाभ उठा रहे हैं। मन्त्र इस प्रकार है :—

श्री सिद्धमहामन्त्र

प्रभो ! शम्भो ! दीनं विहित शरणं त्वच्चरणयो —
र्भवारण्यादस्माद्विषम विषयाशी विषवृतात्।
समुद्रधृत्य श्रद्धा विधुरमपि बद्धादर करं,
दयादृष्ट्या पश्यन्निज तनय मात्मीकुरू शिव ॥

(अर्थ—हे सर्व शक्तिमान ! समस्त संसार का कल्याण करने वाले कल्याणमय शिव भगवान ! आपके चरणों में दीनभाव से शरण आये हुये मुझको विषयरुपी भयंकर विषधर सर्पों से भरे हुए इस संसार रूपी जंगल से बाहर निकाल कर अपनी दयादृष्टि से देखते हुये अपने पुत्र को अपना आत्मीय बनाओ। यद्यपि श्रद्धा आदि का मुझे ज्ञान नहीं है, तथापि चारों ओर से भयभीत होकर हाथ जोड़े ही शरण में आया हूं अतः अपने इस दीन पुत्र को हे शिव ? अपने आप स्वीकार करो।)

(3)

बात ऋषिकेष से ऊपर हिमालय के एक क्षेत्र की है। इस मार्ग पर मै एक व्यक्ति के साथ जा रहा था। अचानक एक महात्मा से भेंट हुई। वे हमें अपनी गुफा पर लिवा गये और देर तक शास्त्रचर्चा कहते रहे। बातचीत में उन्होंने इस बात को कई बार दुहराया कि अपना शरीर आप गंगा को ही अर्पण करना। उनका आग्रह था कि मैं रात्रि को उन्हीं के पास ठहर जाऊँ और साथ वालें आदमी को जाने दूं। साँझ हो रही थी। मुझे जाने की उतावली थी अतः मैं उनके कथन पर रूक नहीं सका। मैंने रुकने की कोई आवश्यकता भी नहीं समझी। जब मैं उनके आग्रह पर किसी भी प्रकार रुकने को तैयार नहीं हुआ तो उन्होंने इस बात को फिर दुहराया और कहा—यह शरीर बहुत पवित्र है। इसे गंगा को ही अर्पण करना।

कई दिन बाद जब मैं फिर उस मार्ग पर गया और चाहा कि उन महात्मा से फिर भेंट कर लूं। मै ठीक उसी स्थान पर था किन्तु वह गुफा कहीं पर भी नहीं मिली।

(4)

हिमालय पर्वत की एक घाटी में शुद्ध और उछलते हुए जल प्रवाहों से युक्त और दिव्य मोतीकर्ण नाम का तीर्थ है जहाँ का जल स्वभाव से ही उष्ण है। उस तीर्थ को देखने की इच्छा से अपनी मनोभिलाषा के अनुसार भ्रमण करते हुए किन्नर देश (रामपुर कुशहर) में पहुंच कर पवित्र नदी शतद्रु (सतलज) को पार कर के कुल्लू देश को मैं गया। वहां एक निर्मण्ड नामक प्रसिद्ध स्थान है। जहां श्री परशुराम जी ने भी तपस्याएँ की थीं। पर्वत की कई श्रेणियों को पार कर व्यास नदी के पार तट के साथ-साथ ऊपर की ओर चल कर मैं भुवन्तर नाम के पवित्र स्थान पर पहुंचा। कुल्लू देश में प्रयाग राज की भांति दो नदियों के संगम से युक्त यह एक मनोहर स्थान है। जहां पार्वती नदी विदाशा से मिलती है।

उस संगम को भी पार करके नदी के उद्गम की ओर लगभग अठारह कोस आगे चल कर मैं पवित्र मणिकर्ण तीर्थ पहुंचा। वहाँ तीन दिन रहने के उपरांत चौथे दिन तीर्थ पर स्नान कर देवपूजनादि एवं भोजन कर चुकने पर मुझे सर्दी से तीव्र ज्वर हो गया। पर्याप्त समय तक इसी प्रकार ज्वराक्रांत होने से मैं शक्तिहीन अनुभव करने लगा। तदुपरांत विश्राम करते-करते धीरे-धीरे चलता हुआ मैं तीन दिन में पुनः भुवन्तर—पहुंचा। वहां भी केवल एक दिन व्यतीत कर व्यास नदी पर स्थित सुलतानपुरी चला गया। वहाँ श्मश्यान भैरव के समीप नगर से बाहर एक धर्मशाला है। वहाँ मैंने निवास किया। वहीं महाज्वर ने मुझे आक्रान्त कर लिया। प्रभातकाल से लेकर सूर्यास्त तक मैं भूमि पर चटाई बिछा

कर निश्चेष्ट हो मूर्छित सा पश्चिम की ओर मुख ऊपर किये पड़ा था, इसी बीच एक दिव्य दृश्य देखा।

मेरे बांई ओर परम दिव्य शरीर धारी और गौर वर्ण वाले मस्तक, सुन्दर नासिका बड़ी-बड़ी फूलों की माला पहिने मन्द मन्द मुस्कुराते तीन पुरुष उपस्थित हुए। श्वेत धोती एवं दुपट्टा पहिने हुए रेशमी अंगरखी एवं सुन्दर पादुकाएँ पहिने हुए थे। मस्तक पर मुकुट, कान्तियुक्त कुण्डल हाथों में मोती मूंगों के यवल तथा हीरों की अंगूठी धारण किये हुए थे। मध्यम कद के, उत्तम बैंत की छड़ी हाथों में लिए हुए थे। ये तीन मेरे पास बांई ओर से आये। उसी समय एक महान तेजस्वी महापुरुष मेरे दाईं ओर आ गया। अग्नि के समान कृष्णापिंगल वर्ण सूर्य के समान देदीप्यमान तेज युक्त (हृष्ट-पुष्ट) पतला ऊंचा और तेजस्वी शरीर पीठ पर घुटनों तक काले चमकते हुए खुले केश। लम्बी काली घनी दाढ़ी मूंछ वाला गेरूए वस्त्र, गले में रुद्राक्ष की माला, मस्तक पर भस्म का त्रिपुण्ड्र, बाँए हाथ में त्रिशूल, दाएँ में कमण्डलु लिये। पैरों में लकड़ी की खड़ाऊ पहिने ये ब्रह्मेश्वर या साक्षात शिव की भांति ही मेरे पास आकर करुणार्द्र दृष्टि से देखते हुए कहने लगा तुम प्यास से व्याकुल हो, मैं जल देता हूं, इच्छापूर्वक पी लो। मेरे बांई ओर खड़े तीनों पुरुषों ने और दाईं ओर खड़े दूसरे ने भी परस्पर एक दूसरे की ओर मौन एवं शांत भाव से देखा। उस त्रिशूलधारी ने मुझे जल पिला कर त्र्यम्बक मंत्र का उपदेश देकर कहा—मैं यहाँ खड़ा हूं। तुम इस मंत्र का जप करो। मृत्युंजय देवता के मंत्र से बढ़कर जीवन दान देने वाला कोई अन्य उपाय नहीं है। सूर्यास्त तक वे सब चित्ररवचित की भांति खड़े रहे। और में तब तक पड़ा-पड़ा मंत्र जप करता रहा। जब वे तीनों पुरुष दक्षिण की ओर चले गए तब मुझे अनुभव हुआ कि मेरा शरीर ज्वर मुक्त हो गया है।

इस प्रकार पूज्य बाबा महाराज के जीवन में अनेक सिद्ध-पुरुषों के प्रसंग हैं जिनकी एक लम्बी सूची है।

गंगा आदि अनेक तीर्थ-स्थानों पर तीर्थ देवताओं ने भी उन्हें दर्शन दिये। उनके ग्रन्थों में ऐसे स्थलों एवं प्रसंगों के उल्लेख भरे हुये हैं। किन्तु उपरोक्त के अतिरिक्त कुछेक और का नामोल्लेख करना ही यहां पर्याप्त होगा–जिनके बाबा संपर्क में आये थे यथा—

1—रामाश्रम जी

2—नेपाली बाबा–और परमहंस तैलंग स्वामी वाराणसी में

3—बंगाली बाबा–अष्टभुजा मन्दिर विन्ध्यवासिनी के निकट

4—आकाशचारी सिद्ध–वशिष्ठ गुफा के पास

5—देवकाक--साधु गंगा कश्मीर

6—जलसन्तरणी विद्या के ज्ञाता फकीर—मट्टन (कश्मीर) से पश्चिमोत्तर स्थल पर वीराने में।

शरीर त्याग :

जीवन के अंतिम दिनों में पूज्य बाबा महाराज दिल्ली में निवास कर रहे थे। कुछ दिनों से वे अस्वस्थ चल रहे थे। कार्तिक-शुक्ल (अक्षय नवमी) सं० 2039, (24 नवम्बर, 1982) को वे ब्रह्मलीन हो गये। दूसरे दिन 25 नवम्बर, 1982 को उनके पार्थिव शरीर को शिष्यों, भक्तों, एवं प्रेमियों के द्वारा अत्यन्त श्रद्धापूर्वक हरिद्वार जाकर नीलधारा में प्रवाहित कर दिया गया।

आज भले ही उनका शरीर हमारे बीच में नहीं है किन्तु उनकी दिव्य शिक्षायें और उनका कृतित्व आज भी हमारा पथ-प्रदर्शन करता हुआ प्रकाश एवं प्रेरणा का स्रोत बना हुआ है।

आचार्य प्रवर प्रत्यभिज्ञा दर्शन के महामनीषी महानुभाव थे। कल्याणमयी राजराजेश्वरी पराम्बा के कृपा कटाक्ष से उन्हें ब्रह्म विद्या के रहस्यों की अनुभूति उपलब्ध थी। संस्कृत बाङ्मय पर उनका अद्भुत अधिकार था। गद्य-पद्य मयी रचनायें जिस गति से वे करते थे, वह वर्णनातीत है।

भक्ति ज्ञान और वैराग्य का प्रतिपादन करने के लिये और संसार को जीवन के धर्म अर्थ और मोक्ष इस तीनों प्रयोजनों को प्राप्त करने के सद्मार्ग दर्शन हेतु समय समय पर अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया। वे ग्रन्थदार्शनिक जगत की अमूल्य निधि के रूप में विद्वत समाज में समादृत है।

आचार्य ऽायमहिताप महामहिम्ने
योगीश्वराय परमार्थविदे परस्मै
सर्वेषु तन्त्रगहनेषु स्वतन्त्रकाय
नित्यं नमोस्तु गुरुवेऽमृतवाग्भवाय ॥"

बड़ी महिमा वाले और सर्वत्र पूजित गुरूवर आचार्य महोदय श्रीमद् अमृतवाग्भवजी महाराज को हमारा नित्य प्रणाम हो। वे परमार्थ तत्व को जानने वाले अत्युत्तम योगिराज थे और तन्त्र के सभी रहस्यों में उन्हें पूरा स्वातन्त्र्य प्राप्त था।

यः सर्वशास्त्र सुरहस्यविदां वरिष्ठः
श्री पाणिनीय गहने सुकृताधिकारः।
कौमार एव निगमागम मर्मवेत्ता
तस्मै नमोस्तु गुरवेऽमृतवाग्भवाय ॥

जो समस्तशास्त्रों के शुभ और उत्तम रहस्यों को जानने वाले विद्वानों में श्रेष्ठ थे, जिन्होंने पाणिनिमुनि के व्याकरण शास्त्र के रहस्यों पर पूरा अधिकार प्राप्त किया था और जो वाल्य अवस्था में ही वेदों और आगमों के रहस्यों को जानते थे उन गुरुवर श्रीमान् आचार्यअमृतवाग्भव जी महाराज को हमारा प्रणाम हो।

हे नाथ सिद्धगतिमाप्य न विस्मरास्मान्
कष्टानि नः क्षपय भद्रशतानि देहि
सत्प्रेणाम् कुरू च नो हृदये निविष्ट
स्तुभ्यं नमोस्तु गुरवेऽमृतवाग्भवाय ॥

हे नाथ सिद्ध पुरुषों की गति प्राप्त करके अब हमें मत भूल जाइये, हमारे कष्टों का नाश करते रहिये और हमें सैंकड़ों कल्याणमय जीवन फल देते रहिये। फिर अन्तर्यामी रूप से हमारे हृदयों में विद्यमान रहते हुए हमें कल्याणमयी प्रेरणा देते रहिए। हमारे गुरुदेव रूप आप श्रीमान् अमृतवाग्भवजी महाराज को हमारा प्राणाम हो।

❀ श्री: ❀

प्रकाशकीय निवेदन

आत्मीय ।

पूज्यपाद ब्रह्मलीन अनन्त श्री बाबा महाराज की जीवनी के प्रकाशन के लिये अनेक भक्तों में अतीव उत्सुकता और लालसा थी । अतः श्रद्धेय डा० श्री बलजिन्नाथजी शास्त्री पण्डित (जम्मू) से पू० बाबा की परिचयात्मक सामग्री तथा आचार्य श्री रामस्वरूप जी अग्निहोत्री से पू० बाबा की प्रकाशित पुस्तकों पर समीक्षात्मक लेख एवं स्वयं बाबा महाराजा की विभिन्न कृतियों, लेखों, तथा "श्री स्वाध्याय" में प्रकाशित रचनाओं का आधार लेकर हमारे आग्रह पर बाबा के ही कृपापात्र श्री शाँतिस्वरूप जी अग्निहोत्री ने प्रस्तुत पुस्तक का प्रणयन किया है ।

इस संदर्भ में डा० श्री बलजिन्नाथजी शास्त्री एवं आचार्य श्री रामस्वरुप जी अग्निहोत्री संस्थान की ओर से हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं ।

श्री शाँतिस्वरुप जी अग्निहोत्री को पाठक वृन्द स्वयं ही धन्यवाद देंगे क्योंकि उन्हीं के अथक परिश्रम के द्वारा यह पुस्तक प्रकाशित हो पा रही है । अस्तु ।

यह प्रकाशन इस संस्थान का प्रथम प्रयास है तथा पूज्यपाद बाबा महाराज की प्रथम पुण्य तिथि पर प्रकाशित करने की उत्सुकता और समय की कमी के कारण इसमें कुछ त्रुटियों का रह जाना बहुत स्वाभाविक है उसके लिए, सुधी पाठक जन विश्वास है, हमें क्षमा करेंगे । इसके साथ ही पू० बाबा महाराज के आत्मीय समुदाय से मैं एक और भी विनम्र निवेदन करना चाहता हूं कि उनके संपर्क में जिनको जो भी आध्यात्मिक आदि दिशा निर्देश प्राप्त हुए हों उन्हें संस्मरण स्वरूप हमें देकर या लिख भेज कर अनुगृहीत करें ताकि जन सामान्य एवं साधक-गणों के लाभार्थ उन्हें प्रकाशित किया जा सकें ।

अभिन्न,

गिरिराज शरण गुप्ता
अर्थमंत्री

सियाराम गर्ग
महामंत्री

श्रीमद्मृतवाग्भवाचार्य सांस्कृतिक शिक्षा एवं शोध संस्थान,
जयपुर ।

॥ श्रीः ॥

महामहिम आचार्य श्री मद्-अमृतवाग्भव प्रणीत ग्रन्थ;

(क) धर्म विषयक

१. परम शिव स्तोत्र
२. श्री परशुरामस्तोत्र (मुद्रित)
३. श्री पर शिवाष्टक (मुद्रित)
४. श्री पवननन्दनाष्टक
५. श्री बालाम्बास्तवः
६. श्री कृष्णगीत दशकम्
७. बालकं मां गीतम्
८. श्री मन्द्राक्रान्तास्तोत्रम् (दो संस्करणो में मुद्रित)
९. महागुरु श्री कृष्णस्तोत्रम्
१०. श्री बालकृष्ण दशकम्
११. रामाश्व घाटी चतुष्टयम्
१२. देवी मानसपूजा
१३. श्री मानस शिव स्तुति
१४. श्री महानुभवशक्ति स्तोत्र (मुद्रित)
१५. श्री सप्तपदी हृदयम् (मुद्रित)
१६. श्री अवधूताभिवादनम्
१७. श्री स्वाध्याय महिमस्तोत्रम्
१८. श्री त्रिगुणेश्वरस्तोत्रम् (मुद्रित)
१९. त्र्यम्बिकेश्वरस्तोत्रम् ।

(ख) दर्शन विषयक

१. आत्मविलास : (सुन्दरी टीका सहित) दो संस्करण मुद्रित
२. श्री विंशतिका शास्त्रम् (मुद्रित)
३. श्री सिद्धमहारहस्यम् (दो संस्करण मुद्रित)
४. वस्तुस्थिति क्या है (हिन्दी में मुद्रित)

(ग) राष्ट्रनीति विषयक

१. श्री राष्ट्रालोक (मुद्रित)

२. श्री राष्ट्रसंजीवन भाष्यम्

३. सङ्क्रान्ति पंचदशी (मुद्रित)

(घ) वर्णनात्मक

१. श्री देशिक दर्शनम् (मुद्रित)

२. श्री संजोवनी दर्शनम् (मुद्रित)

३. श्री सिद्ध मानव दर्शनम् (मुद्रित)

४. श्री अमरेश्वर दर्शनम् (मुद्रित)

(ङ) काव्यात्मक

१. अमृत सूक्तिपञ्चाशिका (मुद्रित)

२. श्री वरकलवंश वृत्त काव्यम्

३. श्री चारुसन्देश:

४. कृतघ्नमित्रं प्रतिपत्रम्

५. वैंधान प्रति

६. श्री सूक्ति लहरी

७. कविराज गोपीनाथाभिनन्दनम् (मुद्रित)

(च) हिन्दी कहानियाँ

१. सुदृढ़ शरीर

२. विचित्रविधान

३. प्रमाद

४. मल्लयुवा

❀❀❀